युद्ध–क्षेत्र में आदिवासी ज़िंदगियाँ

बीजापुर के गाँवों में सुरक्षा कैंप के बीच असुरक्षित जीवन

पीपल्स यूनियन फॉर डैमोक्रैटिक राइट्स, दिल्ली
मार्च 2015

प्रस्तावना

जून–जुलाई 2014 से छत्तीसगढ़ के बीजापुर जिले में वन गाँवों से ओपरेशन ग्रीन हंट के गहन होने की खबरें आ रही थीं। नागरिक अधिकार संगठनों से लगातार ज़मीनी स्तर पर इन मामलों की जांच के लिए मांग की जा रही थी। इसलिए, पीयूडीआर ने 26 से 31 दिसंबर 2014 के बीच छत्तीसगढ़ के बीजापुर जिले की उसूर तहसील के सारकेगुड़ा, राजपेटा, कोट्टागुडेम, पुसबाका, बासागुड़ा, लिंगागिरी, कोरसागुड़ा, कोट्टागुड़ा और तीमापुर में एक जांच की। प्रयास था कि इन गाँवों में कुछ दिन रहकर आदिवासियों के मुख्य मुद्दों को समझा जाए और उनका दस्तावेजीकरण किया जाए।

पीयूडीआर ने पिछले दशक में अन्य नागरिक अधिकार संगठनों के साथ मिलकर छत्तीसगढ़ के बस्तर क्षेत्र में राजकीय दमन पर कई रिपोर्ट निकाली हैं। यह रिपोर्ट पिछली रिपोर्टों के काम को आगे बढ़ाती है। पर पिछली रिपोर्टों से अलग, जो कि किसी एक घटना से जुड़ी थीं (जैसे जून 2012 में सीआरपीएफ द्वारा सारकेगुड़ा हत्याकांड जिसमें 17 लोग मारे गए थे), यह रिपोर्ट मौका देती है विस्तृत रूप से यह समझने का, की किस प्रकार राज्य द्वारा दमनकारी गतिविधियों ने आदिवासियों के जीवन को भीतर तक पूरी तरह से बदल दिया है। जांच के दौरान इन नौ गाँवों के निवासियों द्वारा दी गई जानकारी, एकत्रित किये गए तथ्य और अवलोकन इस बात की पुष्टि करते हैं कि एक युद्ध–क्षेत्र में रह रहे लोगों को रोज़मर्रा के जीवन में कितनी असुरक्षा और मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। यह रिपोर्ट राज्य द्वारा अपने सैन्य बलों और सुरक्षा कैंपों के माध्यम से क्षेत्र में मंद रूप से पर हर समय किए जा रहे दमन को रेखांकित करती है।

इस रिपोर्ट की अत्यावश्यकता इस बात में झलकती है की आज दखल देने की सख्त ज़रूरत है ताकि ये सुरक्षा कैंप बीजापुर के गाँवों का एक स्थाई हिस्सा न बन जाएं।

विषय सूची

भूमिकाः कैंपों के साये में रहते लोग, उनकी ज़मीनें और जीविकाएं	4
1 आदिवासियों को कौन परेशान करता है और उन्हें क्यों गुस्सा आता है?	8
2 युद्ध–क्षेत्र में जीवन के कुछ पहलू – सड़कें, यातायात और कैंप	16
3 'बेलगाम सैन्यबल'	19
निष्कर्ष	23
मांग	26
बॉक्स 1: बैलाडिला में लौह अयस्क खनन	5
बॉक्स 2 : सलवा जुडूम	6
बॉक्स 3 : स्थाई वारंट	22
बॉक्स 4 : रेवाली में हत्या, प्रदर्शन एवं पुलिसिया दमन	27
तालिका 1 : जिन गाँवों में पीयूडीआर गया उनकी जनांकिकीय रूपरेखा	4
तालिका 2 : बीजापुर जिले में सुरक्षा बलों द्वारा किये गए उल्लंघनों की घटनाएं	14

भूमिकाः कैंपों के साये में रहते लोग, उनकी ज़मीनें और जीविकाएं

छत्तीसगढ़ के सबसे दक्षिणी क्षेत्र में स्थित बीजापुर, राज्य के 27 जिलों में से एक है। यह जिला 11 मई 2007 को दांतेवाड़ा से काट कर बनाया गया था। इसका कुल क्षेत्रफल 6562 वर्ग किलो मीटर है। दांतेवाड़ा और बीजापुर जिलों की सीमा पर बैलाडिला की पर्वत श्रंखला स्थित है, जिसकी ऊँचाई 4000 फीट है। राज्य का अधिकतर हिस्सा पहाड़ी है। बैलाडिला की पहाड़ियों का आकार बैल के कूबड़ जैसा दिखता है इसीलिए इनका नाम यह पड़ा है।

2011 की जनगणना के अनुसार बीजापुर के 2,55,000 लोगों में से 89 प्रतिशत जिले के 741 गाँवों में रहते हैं। जनसंख्या का घनत्व 30 लोग प्रति वर्ग किलो मीटर है। बीजापुर में 1000 पुरुषों पर 984 महिलाएं हैं और यहाँ की साक्षरता दर 41.58 प्रतिशत है। पीयूडीआर जिन गाँवों में गया वहाँ की आबादी का अधिकांश हिस्सा दोरला कोया और मूरिया जनजाति, महार जाति, और तेलुगु भाषी लोगों का है और इसके अलावा कुछ मुसलमान परिवार भी यहाँ हैं। हमें ताज़िये दिखे।

बीजापुर जिला लौह अयस्क के भंडारों से भरा हुआ है। नेशनल मिनरल डैवेलपमैंट कॉरपोरेशन (एनएमडीसी) द्वारा यहाँ 14 ऐसे भंडार चिन्हित किए गए हैं। हालांकि किरांदुल और बचेली खनन परिसर दांतेवाड़ा में हैं और खनन से जुड़े सभी कार्यकलाप जैसे सड़क निर्माण, पाइप लाइन बिछाना आदि भी वहीं हो रहे हैं, परन्तु पहाड़ियों के दूसरी तरफ स्थित बीजापुर को भी खनन के कारण होने वाले जल प्रदूषण के परिणाम भुगतने पड़ रहे हैं। पीयूडीआर ने सारकेगुड़ा, राजपेटा, कोट्टागुड़ा, पुसबाका, बासागुड़ा, लिंगागिरी, कोरसागुड़ा, कोट्टागुडेम और तीमापुर गाँवों का दौरा किया, ये सभी गाँव लौह अयस्क खदानों और भंडारों के आसपास हैं।

ये गाँव तालपेरू नदी के किनारे हीरापुर में स्थित बासागुड़ा थाने के अंतर्गत आते हैं, जो कि बासागुड़ा से एक पुल से जुड़ा है। यह नदी गोदावरी नदी से जाकर मिलती है। बासागुड़ा वही गाँव है जहाँ के पत्रकार साई रेड्डी की 2013 में हत्या कर दी गई थी। (देखें पीयूडीआर की प्रैस विज्ञप्ति www. pudr.org दिनांक 25 दिसम्बर 2013)। सलवा जुडूम के कहर से पहले 2005 तक बासागुड़ा एक चहल–पहल वाला बाज़ार था और तुलनात्मक रूप से एक समृद्ध गाँव था। सलवा जुडूम छत्तीसगढ़ में 2005 से 2008 के बीच राज्य द्वारा

तालिका 1 : जिन गाँवों में पीयूडीआर गया उनकी जनांकिकीय रूपरेखा

गाँव का नाम	घरों की कुल संख्या	कुल जनसंख्या	लिंग अनुपात	साक्षरता	कुल मज़दूर	मुख्य (मेन) मज़दूर	हाशिए के (मार्जिनल) मज़दूर
सारकेगुड़ा	41	145	790	0.8	99	40	59
राजपेटा	28	108	800	12.5	72	55	17
कोट्टागुड़ा	79	311	981	19.3	183	100	83
पुसबाका	350	1533	1052	12.7	1045	6	1039
तीमापुर	285	1522	927	22.5	873	119	754
लिंगागिरी	91	336	1100	36.8	248	3	245
कोरसागुड़ा	72	323	1153	11.6	216	0	216
बासागुड़ा	61	285	516	79.04	185	116	69

स्रोत : 2011 की जनगणना : नोट – कोट्टागुडेम गाँव की जनगणना के विवरण उपलब्ध नहीं हैं।

बॉक्स 1 : बैलाडिला में लौह अयस्क खनन

1955–56 में जब पहली बार जैपनीज़ स्टील मिल्स ऐसोसिएशन के प्रौफेसर इयूमूरा ने जैपनीज़ स्टील मिल्स का ध्यान बैलाडिला के लौह अयस्क के भंडारों की बहुमूल्यता और भारत के पूर्वी तट से इसकी नज़दीकी की तरफ दिलाया, तब ही बैलाडिला की व्यापारिक महत्व की पहचान हुई। जैपनीज़ स्टील मिल्स के साथ 1960 में एक समझौता किया गया। नेशनल मिनरल डैवेलपमैंट कॉरपोरेशन (एनएमडीसी) की एक रिपोर्ट के आधार पर खनन योजना को 1964 में अनुमोदित किया गया। इस योजना का उद्घाटन 1968 में किया गया था। बैलाडिला को विशाखापट्टनम से जोड़ने के लिए रेलवे लाइन बिछाई गई, ताकि लौह अयस्क को विशाखापट्टनम से होते हुए जापान ले जाया जा सके।

आज वही प्रक्रिया दोहराई जा रही है। गुजरात के रूइया घराने की ऐसार कंपनी को 2006 में लौह अयस्क बैलाडिला से विशाखापट्टनम ले जाने के लिए पाइप लाइन लगाने की अनुमति दी गई है। साथ ही ऐसार को खानों से विशाखापट्टनम तक मलबा ले जाने के लिए जल स्त्रोतों के इस्तेमाल की अनुमति भी मिल गई है। 2012 में एनएमडीसी और छत्तीसगढ़ माइनिंग डैवलपमैंट कॉरपोरेशन (सीएमडीसी) के बीच एक संयुक्त उद्यम शुरू करने के लिए एक समझौता हुआ जिसके तहत जगदलपुर से 16 किलो मीटर दूर नागरनार में एक एकीकृत स्टील प्लांट लगाया जाना था। छत्तीसगढ़ सरकार ने तीस लाख टन प्रति वर्ष तक के उत्पादन के लिए एक अलग खान भी आबंटित की। अक्टूबर 2014 में एनएमडीसी और सीएमडीसी के बीच एक संयुक्त उद्यम को 10 लाख टन प्रति वर्ष उत्पादन के लिए 316 हैक्टेयर वन भूमि के उपयोग की अनुमति दी गई थी।

उल्लेखनीय है कि एनएमडीसी की ओपन कास्ट खदानों ने क्षेत्र को बर्बाद कर दिया है। क्षेत्र में स्थित दंखिनी और शंखिनी नदियाँ देश की सबसे अधिक प्रदूषित नदियों में से हैं। सब तरफ पर्यावरण की बर्बादी के लक्षण दिखाई देते हैं। क्षेत्र में कृषि में गिरावट, पानी और पानी के स्त्रोतों की गुणवत्ता में गिरावट, जंगलों का क्षीण होना आदि साफ–साफ दिखाई देते हैं। क्या यह संभव है कि बैलाडिला में लौह अयस्क खनन के कारण वातावरण, वनस्पति, जीवजगत और मनुष्यों के जीवन स्तर में गिरावट आई है? क्या संभव है कि पानी की गुणवत्ता में गिरावट के कारण ही लोग पहले से ज़्यादा बीमार रहने लगे हैं? हाल में हुए एक शोध *'एनवायरमेंट इम्पैक्ट ड्यू टू आयरन ओर माइनिंग इन छत्तीसगढ़, रीसेंट रिसर्च इन साईंस एंड टैकनोलोजी, 2014, (6) 27–29'* में भूमिका दास ने बताया है कि खनन के कारण सतही–जल और भू–जल समेत आस पास के पर्यावरण पर विपरीत असर हुआ है। खनन के लिए रासायनिक पदार्थों का प्रयोग होता है। इसके अलावा, चट्टानों के मलबे का अपवाह और इसके सतही पानी में डाले जाने से जल और मिट्टी के सभी स्त्रोतों के प्रदूषित होने की संभावना बढ़ जाती है। दास खास तौर से खुले खदान खनन की प्रणाली पर ध्यान केंद्रित करती हैं। इस प्रणाली में भारी मशीनों की मदद से लौह अयस्क को 'खुले गड्ढों' से निकाला जाता है जिसका तत्कालीन असर वातावरण पर होता है। प्रदूषित हुई शंखिनी और दंखिनी नदियाँ इस बर्बादी का जीवित प्रमाण हैं।

क्षेत्र के लोगों के दमन के लिए चलाया गया अभियान था (देखें बॉक्स – 2)। क्षेत्र में जहाँ हर तरफ धान के खेत लहलहाते थे वहाँ आज दूर दूर तक बंजर ज़मीन दिखाई देती है। हीरापुर में तालपेरू नदी के किनारों पर किसी समय एक सरकारी विश्राम गृह हुआ करता था, जो कि बाद में सीआरपीएफ के 168 बटैलियन के लिए एक कैंप में बदल दिया गया।

क्षेत्र में कोरसागुड़ा तालाब के पास स्थित सारकेगुड़ा कैंप, घने जंगल को हटा कर बनाया गया एक किलाबंद कैंप है। क्षेत्र में क्योंकि सिंचाई के कोई साधन मौजूद नहीं हैं ऐसे में कोरसागुड़ा तालाब लोगों की जीविका के लिए खासा महत्व रखता था। अब गाँव के लोग कैंप के आस–पास जाने से बचते हैं, जिसके कारण यह तालाब उनकी पहुँच से बाहर हो गया है। 29 दिसम्बर

बॉक्स 2 : सलवा जुडूम

केन्द्र के ग्रामीण विकास मंत्रालय की एक ड्राफ्ट रिपोर्ट 'कमिटी ऑन अग्रेरियन रिलेशनस एंड अनफिनिश्ड टास्कस ऑफ लैंड रिफार्मस' 2009 में सलवा जुडूम की हकीकत बताई गई है। रिपोर्ट में सलवा जुडूम को संदर्भ में रखते हुए उसका खुलासा किया गया है। ''मध्य भारत के अधिकतर आदिवासी इलाकों में नक्सलवादी मौजूद हैं, और उनकी मौजूदगी पहले और आने वाले समय में ज़मीन से बेदखली, सरकार द्वारा अपनी संवैधानिक ज़िम्मेदारी को न निभा पाने और सरकार द्वारा आदिवासियों को सुरक्षा देने की अपनी ज़िम्मेदारी से हाथ खींच लेने के कारण है।''

फिर रिपोर्ट बताती है – ''शुरूआत में (2000 में) आदिवासियों ने अधिग्रहण और विस्थापन का विरोध किया था। उस समय गहन विरोध के चलते राज्य ने अपनी योजना वापस ले ली थी। उस समय यह तर्क दिया गया था कि मुरिया लोगों के साथ बेईमानी नहीं की जानी चाहिए। यह उनके लिए ज़िंदगी और मौत का मामला है और मुरिया लोग मौत से नहीं डरते। और अगर लौह अयस्क के प्रचुर भंडारों में से लौह अयस्क को निकाला जाना है तो कोई और तरीका अपनाना ज़रूरी है।

यह नया तरीका सलवा जुडूम के रूप में सामने आया (शिष्ट भाषा में जिसका मतलब शांति शिकार है)। सलवा जुडूम को भाजपा के नतृत्व वाली सरकार का पूरा समर्थन प्राप्त था और विडम्बना यह थी कि इसका नेतृत्व कांग्रेस के टिकट पर जीते, विरोधी दल के नेता महेन्द्र कर्मा द्वारा किया गया था। सलवा जुडूम के मुखिया और सदस्य मूरिया लोग थे जिनमें से कुछ कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ़ इंडिया (माओवादी) के स्थानीय कार्यकर्ता और नेता रह चुके थे। सलवा जुडूम के पीछे व्यापारी, ठेकेदार और खनिक थे जो कि इस रणनीति की सफलता के इंतज़ार में थे। सलवा जुडूम को पैसा देने वाले पहली कंपनियाँ टाटा और ऐसार थीं जो कि 'शांति' की तलाश में थीं। सलवा जुडूम का पहला घातक हमला मूरिया ग्रामीणों पर हुआ, खासकर उन पर जो कि अभी भी कम्यूनिस्ट पार्टी ऑफ़ इंडिया (माओवादी) (सीपीआई (माओवादी)) से किसी तरह का संबध रखे हुए थे। इस तरह से यह भाइयों–भाइयों में एक खुली लड़ाई बन गई। सरकारी आंकड़ों के अनुसार 640 गाँव बंदूक के बल पर और राज्य की रहनुमाई पर खाली करवा दिए गए, जला दिए गए। दांतेवाड़ा जिले की आधी आबादी लगभग 3,50,000 आदिवासी विस्थापित हो गए, महिलाओं के साथ बलात्कार हुए, उनकी बेटियों को मार दिया गया और युवाओं को अपंग बना दिया गया। जो लोग बच कर जंगलों में भाग नहीं पाए उन्हें भेड़ बकरियों की तरह सलवा जुडूम द्वारा चलाए जा रहे रिफयूजी कैंपों में खदेड़ दिया गया....''

ऊपर दिया गया वर्णन सलवा जुडूम को लेकर पाँच जनवादी अधिकार संगठनों पीयूडीआर, पीयूसीएल (छत्तीसगढ), पीयूसीएल (झारखंड), एपीडीआर (पश्चिम बंगाल) और इंडियन ऐसोसियेशन ऑफ़ पीपल्स लॉयर्स द्वारा की गई, शायद सबसे पहली जाँच द्वारा सामने लाए गए तथ्यों की पुष्टि करता है। इस जाँच दल द्वारा जारी रिपोर्ट 'सलवा जुडूम – शांति अभियान या सैनिक कार्यवाही 2006' में यह निष्कर्ष निकाला गया था कि 2005 में शुरू किए गए सलवा जुडूम द्वारा अदिवासियों को एक दूसरे के खिलाफ खड़ा दिया था। इसका उद्देश्य वन गाँवों को खाली करवाना, और आदिवासियों को सड़कों के पास राहत शिविरों में खदेड़ना था ताकि माओवादियों को कमज़ोर किया जा सके और वनों को खनन के लिए खोला जा सके।

सन 2011 के अपने फैसले में सर्वोच्च न्यायालय ने सलवा जुडूम को गैरकानूनी करार दिया और सरकार को यह आदेश दिया कि वह उन सभी स्पेशल पुलिस ऑफीसरों (जो कि सलवा जुडूम चलाने के लिए रखे गए थे), सशस्त्र सैनिकों और माओवादियों के खिलाफ जाँच और कार्यवाही करे जिन पर आपराधिक आरोप लगे थे। पर इस समय तक सलवा जुडूम ने अपना उद्देश्य हासिल कर लिया था। विडम्बना यह है कि तब से आज तक के समय में इन न्यायिक आदेशों ने सिर्फ यही दर्शाया है कि कितनी आसानी से और कितनी उद्दंडता से इन्हें नकारा जा सकता है। आदेशों की यह अवहेलना, आदिवासियों को उपलब्ध जनतांत्रिक रास्तों और उनकी प्रभावकारिता, जिनमें न्यायिक उपाय भी शामिल हैं, पर एक टिप्पणी है।

की शाम को कोरसागुड़ा गाँव से राजपेटा गाँव की ओर जाते हुए हमें बताया गया कि इन दोनों के बीच का सबसे छोटा रास्ता कैंप के पास से जाता है, पर उससे बच कर निकलना ही बेहतर है। गाँव वालों के अनुसार इस कैंप में सीआरपीएफ और कोबरा के कम से कम 3500 अर्धसैनिक तैनात हैं। यह एक अतिश्योक्ति भी हो सकती है परन्तु दूर से देखने से भी कैंप काफी बड़ा लगता है। कैंप के अर्धसैनिकों द्वारा गाँवों और जंगलों में लगातार पहरा दिया जाता है।

यह पूरा क्षेत्र पहाड़ियों से घिरा हुआ है। आदिवासियों के पूर्वजों ने घने जंगलों के कुछ हिस्सों को खुले उपजाऊ धान के खेतों में परिवर्तित कर दिया था। पर खेत हर तरफ जंगलों से घिरे थे। साल में धान की केवल एक फसल होती थी जो कि मानसून पर निर्भर थी। दिसम्बर में पीयूडीआर के दौरे के दौरान 'मंजई' (धान को छिलके से अलग करना) का मौसम था। धान की कटाई के बाद खेतों में ज़ोरदार गतिविधियों के नज़ारे दिखाई दे रहे थे। यह काम खतम होने के बाद बड़े पैमाने पर आदिवासी किसान आंध्र प्रदेश में मिर्च के खेतों में काम करने चले जाते हैं जहाँ उन्हें 150 रु. दिहाड़ी मिलती है। वे वहाँ अधिकतम दो महीने काम करते हैं। मार्च से मई तक महुआ और तेंदू पत्ता बीनने का काम होता है। पचास तेंदू पत्तों के एक बंडल के लिए 1.50 रु. मिलते हैं। हर व्यक्ति एक सीज़न में औसतन 6 से 7000 बंडल इकट्ठा करता है। वे इन्हें आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र के सेठों को बेचते हैं। जीविका के रूप में रुपये हासिल करने का यह एक महत्वपूर्ण ज़रिया है।

सबसे नज़दीकी प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र बासागुड़ा में है। इसके अलावा पूरे क्षेत्र में स्वास्थ्य सेवाओं के नाम पर सिर्फ 'मितानिन' योजना ही उपलब्ध है। मितानिन एकमात्र सरकारी स्वास्थ्य योजना है जो कि चलती हुई दिखाई देती है। और ऐसा इस योजना से जुड़ी गाँव की आदिवासी महिला स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं की निष्ठा और कर्मठता के कारण है। ये कार्यकर्ता मुख्यतः घरों घरों में पैदल घूमकर स्वास्थ्य सेवाएं मुहैया करवाती हैं। अधिकतर सरकारी स्कूल जो एक समय पर अच्छे चल रहे थे, धीरे धीरे उपेक्षा के कारण बर्बाद हो गए हैं। सैंकड़ों आदिवासी बच्चों को केन्द्र सरकार द्वारा चलाए जा रहे आवासीय स्कूलों में ठूंसा जा रहा है। अधिकतर शिक्षक अनियमित रूप से 'अनुदेशकों' (अस्थाई सहायकों) की तरह काम कर रहे हैं, जिन्हें कभी भी काम से निकाला जा सकता है। बासागुड़ा के स्कूल में 225 बच्चे और 9 शिक्षक हैं और तीमापुर के स्कूल में 60 बच्चे और 5 शिक्षक हैं। जबकि आश्रम स्कूलों में सैंकड़ों बच्चे हैं, जैसे अवापल्ली के आश्रम स्कूल में कम से कम 500 बच्चे हैं। प्रत्येक बच्चे के लिए केन्द्र सरकार हज़ार रुपये प्रति महीना देती है।

बीजापुर, सुकुमा और दांतेवाड़ा के अफसरों के अनुसार स्कूल इसलिए नहीं चल रहे थे क्योंकि या तो उनका प्रयोग सुरक्षा बलों द्वारा किया जा रहा था, या फिर वे सलवा जुडूम या 'अंदरवालों' द्वारा उड़ा दिए गए थे। इसलिए राज्य सरकार ने सर्व शिक्षा अभियान के तहत पोटा केबिनों में अस्थाई स्कूल शुरू किए थे। किसी समय ये सलवा जुडूम से प्रभावित बच्चों के लिए ब्रिज स्कूलों के नाम से शुरू किए गए थे, पर आज यही औपचारिक स्कूल बन गए हैं। इन स्कूलों में अनुदेशक रखे गए, जिनका काम पढ़ाना नहीं बल्कि दूरदराज के क्षेत्रों से बच्चों को लेकर आना था। परन्तु क्योंकि नियमित शिक्षकों के लिए कोई प्रावधान नहीं था, यही अनुदेशक पढ़ाने का काम करने लगे और छात्रों की पूरी देखभाल की ज़िम्मेदारी इन पर आ गई जबकि उनमें से अधिकतर लोग दसवीं या बारहवीं तक ही पढ़े हैं। अब इन स्कूलों को, शिक्षा के अधिकार के कानून के क्रियान्वन के लिए, इनमें नियमित शिक्षकों की नियुक्ति की ज़रूरत है और इसके चलते अनुदेशकों को हटाया जाना पड़ेगा, जिसका विरोध हो रहा है। 2005 में सलवा जुडूम के आने के बाद गाँव वालों की ज़िंदगियाँ हमेशा के लिए पूरी तरह बदल गईं। आज इनकी ज़िंदगियों का स्वरूप सलवा जुडूम और उसके बाद 2009 से चलाए गए ऑपरेशन ग्रीन हंट ने तय कर दिया है। हालांकि जनवरी 2011 में सर्वोच्च न्यायालय ने सलवा जुडूम से जुड़े एक मामले (नंदिनी सुदर और अन्य बनाम छत्तीसगढ़ राज्य) में निर्देश दिए थे कि गाँव वालों को उनके गाँवों में पुनर्वासित किया जाए, कैंपों को हटाया जाए, स्कूलों और स्वास्थ्य केन्द्रों में से सुरक्षा बलों को हटाया जाए, पर गाँवों में जो दिखाई दिया उससे साफ़ पता चलता है कि ऐसा कुछ हुआ नहीं। ज़मीनी हालात सर्वोच्च न्यायालय की परिकल्पना से बिलकुल अलग और जटिल हैं।

1 आदिवासियों को कौन परेशान करता है और उन्हें क्यों गुस्सा आता है? शिकायतें जिनकी कोई सुनवाई नहीं होती

सारकेगुड़ा (27 दिसम्बर) – सारकेगुड़ा उन 7 गाँवों में से एक है जहाँ सलवा जुडूम द्वारा खदेड़े गए लोग 2009 में लौटकर रहने लगे थे। विस्थापित लोगों को उनके गाँवों में वापस लाना और उनकी ज़िन्दिगियों को नए सिरे से बनाना पूरी तरह से नागरिक समाज की पहल थी।

13 दिसम्बर 2014 की सुबह को सारकेगुड़ा कैंप के पास, जो की 2012 के हत्याकांड के बाद स्थापित किया गया था, एक लैंडमाइन विस्फोट व उसके बाद एक प्रेशर बम का विस्फोट हुआ जिसके कारण सारकेगुड़ा कैंप नष्ट हो गया। इसके दो दिन बाद सुबह–सुबह कोबरा के हथियारबंद दलों ने आस–पास के गाँवों में घरों में घुसकर लोगों को पीटा। उनको पीटते समय सैनिक चिल्ला रहे थे कि 'तुम में से किसने बम फोड़ा है?' एक गाँव वाले ने कहा 'आपके कैंप के सामने बम फूटा है, आपने बम फोड़ने वाले को कैसे नहीं देखा, अगर यह घटना गाँव के अन्दर होती तो बात अलग होती।'

गाँव वालों के अनुसार, सैनिक धमकी दे रहे थे कि उनके पास 5 लोगों को मारने का ऑर्डर है। सैनिक कह रहे थे 'कोई तुम्हें बचाने नहीं आएगा और तुम हमारा बाल भी बांका नहीं कर पाओगे।' सैनिक अपने साथ 11 गाँव वालों को ले गए। उनके नाम हैं – इरपा कृष्णा, इरपा बाबूराव, इरपा कन्ना, इरपा कन्ना के पिता इरपा नागेश, मोदिम दिनेश, इरपा महेश, इरपा गनपत, इरपा चंद्रेश के पिता इरपा नागेश, मदकम नागेश, इरपा लच्छा, इरपा मनोज। इन लोगों को हाथ बाँधकर और धक्के देकर ले जाया गया। जाने से पहले दल ने गाँव वालों को धमकी दी 'अगर हमें कुछ भी हुआ तो हम तुम्हें देख लेंगे और ऐसा कुछ न हो इसकी ज़िम्मेदारी तुम्हारी ही होगी।' कैंप पहुँचने पर गाँव वालों से दिन भर 'बेगार' करवाई गई। उनसे कैंप के आस–पास झाड़ियों की सफाई करवाई गई, शायद ये सुनिश्चित करने के लिए कि आस–पास कोई और लैंडमाइन तो नहीं हैं। जब गाँव वालों से हमने यह पूछा कि उन्होंने कोई शिकायत दर्ज़ की या नहीं, तो उन्होंने जवाब दिया, 'किससे शिकायत करें?' उन्होंने यह भी कहा कि एक बार कलेक्टर ने उनसे कहा था कि वह तब तक कुछ नहीं कर सकता जब तक उसको लिखित में शिकायत न दी जाए। कलेक्टर ने यह भी कहा की अगर वह गाँव वालों के बयानों के आधार पर पुलिस से बात करता है तो पुलिस उससे कहती है कि उसे गाँव वालों की तरफदारी नहीं करनी चाहिए क्योंकि पुलिस ने भी अपने जवान खोये हैं? गाँव वालों ने कहा कि उनमें हिम्मत नहीं कि वे शिकायत कर सकें क्योंकि ऐसा करने पर सुरक्षा बल उन पर अपना गुस्सा निकालेंगे। वे किसी को भी उठा लेते हैं और यातनाएं देते हैं, झूठे मुकदमे लगाते हैं, या उनको छोड़ने के लिए पैसों की मांग करते हैं, और 'अन्दर वालों' (बोलचाल की भाषा में माओवादियों को यहाँ ऐसे संबोधित किया जाता है) के ठिकानों के बारे में जानकारी मांगते हैं।

गाँव वालों ने बताया की पहरा दे रहे सुरक्षा बल उनको आते–जाते रोक कर पूछताछ करते हैं कि 'वे कहाँ जा रहे हैं, किस काम से जा रहे हैं, और किस से मिलने जा रहे हैं।' सज़ा के रूप में कभी–कभी उन्हें सुबह से शाम तक चैक–पोस्ट पर बिठा कर रखा जाता है। महिलाओं को भी बख्शा नहीं जाता। वे विशेष रूप से असुरक्षित हैं। एक गाँव वाले ने बताया कि कुछ दिनों पहले एक महिला को कैंप में रोक लिया गया था और उसे यह साबित करना पड़ा था कि उसका दुधमुंहा बच्चा है और उसके लिए अपने बच्चे को दूध पिलाने के लिए घर जाना ज़रूरी है।

ऐसे में कुछ लोगों को लगने लगा है कि उन्होंने वापस लौटकर सही किया या नहीं? उनके मन में यह सवाल भी आता है कि इतने अधिक उत्पीड़न के चलते क्या उनके लिए अपनी ज़मीन छोड़ देना ही बेहतर नहीं है? जब अपनी ज़मीनें जोत भी रहे होते हैं तो केवल आस–पास की ज़मीनें ही जोतते हैं। जिसकी वजह से बहुत सारी ज़मीन बंजर रह जाती है। लोगों ने बताया कि बासागुड़ा एक समय पर धान की खेती के लिए जाना जाता था। सलवा जुडूम के आने से पहले यहाँ सिंचाई का केवल एक ही स्त्रोत (वर्षा) होने के बावजूद संतोष जनक कमाई हो जाती थी। उदाहरण के लिए, एक महिला कमला ने बताया कि उनका परिवार गाँव

का पटेल था और उनके पास 62 एकड़ ज़मीन के पट्टे थे। पर अब वे 10–12 एकड़ से ज़्यादा खेत नहीं जोतते। यही हाल और परिवारों का भी है जो अपनी सारी ज़मीन नहीं जोत रहे।

सैन्य बलों द्वारा लगातार उन पर नक्सली होने का आरोप लगाया जाता है। गाँव वालों ने इसके कई उदाहरण दिए जैसे, अगर वे गड्ढा खोद रहे होते हैं और सुरक्षाकर्मी पास से गुज़रते हैं तो तुरंत यह मान लिया जाता है कि वे बम लगा रहे हैं। अगर उनके पास कोई काम से जुड़े औज़ार होते हैं, चाहे वे कम धार के हों, तो उन्हें डर रहता है कि उन पर ये इलज़ाम न लगा दिया जाए कि उनके पास हथियार हैं और वे नक्सली हैं। गाँव वालों को इस बात का अफ़सोस है कि वे अब स्वतंत्रता से घूम नहीं सकते, वे अपने पारंपरिक धनुष, बाण, चाकू, या कुल्हाड़ी लेकर जंगल में नहीं जा सकते क्योंकि सुरक्षाकर्मी इन्हें अवैध हथियार बता कर यह साबित कर सकते हैं कि वे 'अन्दर वाले' हैं।

काका कन्ना नाम के एक व्यक्ति ने कहा कि अक्टूबर 2014 में जब वह मवेशी चरा रहे थे तो पहरा दे रहे सुरक्षाकर्मियों ने उन्हें बुलाया और यह जानना चाहा कि वहाँ खुदा गड्ढा किसने खोदा था। सैनिक गुस्से में थे और उनमें से एक ने कहा, 'माँ....चो.... तुम बम लगाते हो और गाय चराते हो तुम माँ...चो.... सब एक सामान हो'। उन्होंने बताया कि स्कूल जा रहे बच्चों को रोका जाता है और कहा जाता है 'तुम शाम को नक्सलियों के लिए काम करते हो और सुबह स्कूल जाते हो। तुम *उनके* लिए मुखबिर का काम करते हो'।

पुसबाका और कोट्टागुडेम – पुसबाका और कोट्टागुडेम नामक गाँव (जहाँ पीयूडीआर 28 दिसंबर को गया था) जंगल के भीतर स्थित हैं। पहाड़ी रास्ता चेरला तक जाता है। 2005 तक इस पर से वाहन आ जा सकते थे। पर सलवा जुडूम के बाद और अब 'अंदर वालों' के कारण, सड़कें टूट चुकी हैं, और यातायात के लिए मोटरसाइकिलों का प्रयोग किया जाता है। जिस युवक की मोटरसाइकिल पर बैठकर हम गये थे, वह खुद एक अस्थाई शिक्षक था, जिसको अप्रैल 2015 में नौकरी से निकाल दिया जाएगा। वह फिलहाल 6,000 रुपए कमाता है। जब उससे पूछा गया कि चलती व उपयोगी सड़कें क्यों तोड़ दी गईं, तो उसने बताया ऐसा इसलिए किया गया ताकि नए कैंप अन्दर न बन सकें। जब उससे पूछा गया कि यह किसने किया – अन्दर वालों ने या खुद गाँव वालों ने या फिर क्या सीपीआई (माओवादी) और आम लोगों के हित एक जैसे हो गए हैं और इसलिए वे मिल जुल कर ऐसा कर रहे हैं, उसने कोई स्पष्ट जवाब नहीं दिया। पर इतना स्पष्ट हुआ कि कैम्पों के कारण असुरक्षा बढ़ गई है।

आज की तारीख में **पुसबाका** गाँव में 150 परिवार रहते हैं। एक समय में यह एक बड़ा और समृद्ध गाँव था जहाँ धान और वन उपज आजीविका के साधन हुआ करते थे और एक फलते–फूलते बाज़ार का हिस्सा थे। इस गाँव में 2005 तक बिजली हुआ करती थी। पर 2005 में सलवा जुडूम के गुंडों ने यहाँ आकर ट्रांसफार्मर जला दिया। उन्होंने एक स्कूल भी गिरा दिया, जिस पर गाँव वालों को गर्व था। बच्चों को मजबूरन छात्रावास वाले आश्रम स्कूलों में जाना पड़ रहा है। उन्होंने बताया कि पहले यहाँ अरावली से भी क्रिकेट टीमें खेलने आया करती थीं और वे शाम को बिना किसी भय के लौट जाती थीं। यह सब सलवा जुडूम के आने के बाद खत्म हो गया। अब अच्छे दिन जा चुके हैं। लोगों ने हम से पूछा कि क्या वे कभी भी वैसा जीवन व्यतीत कर पाएंगे, जैसा सलवा जुडूम के आने के पहले करते थे?

गाँव वालों ने बताया कि हालांकि धान, मुर्गी, बकरी आदि की चोरी की घटनाएं अब कम हो गयी है, पर 2014 में दिवाली के समय सुरक्षा बलों का एक दल आया था और जबरन हर घर में एक–एक स्पेशल पुलिस ऑफिसर (एसपीओ) ठहरा था। उन्होंने बताया कि वह दल उनकी मुर्गियाँ, बकरियाँ और महुआ चुरा कर ले गया था। सैनिकों ने घरों की तलाशी ली और चावल से भरे मिट्टी के घड़े तोड़ दिए क्योंकि उन्हें लगा की घड़ों में पैसा रखा होगा। कुछ गाँव वाले इस बात से भी नाराज़ थे कि अगर कभी सुरक्षाकर्मी उन्हें कुछ रुपए दे भी दें तो वे बहुत कम होते हैं। उदाहरण के लिए एक बकरी के लिए उन्हें बाज़ार में 8000 रुपए मिलते हैं, सुरक्षाकर्मी सिर्फ 2,000 रुपए ही देते हैं।

गाँव वाले अब पहले की तरह खेतों में जाने की हिम्मत नहीं करते। अब वे खेतों में कम से कम काम करते हैं ताकि उन्हें घर से कम से कम बाहर निकलना पड़े। भय उनकी रोज़मर्रा की ज़िंदगी का एक हिस्सा बन चुका है। समैया बरसे नाम के एक व्यक्ति ने बताया कि कैसे एक दिन उनको पहरा दे रहे बलों ने तालाब पर मछली पकड़ते समय रोक लिया। सैनिकों

ने उनसे उनका पहचान पत्र माँगा। उन्होंने उन्हें अपना कार्ड दिखाया जिसको सुरक्षाकर्मियों ने अपने पास रख लिया और अगले दिन आकर ले जाने को कहा। जब वे अगले दिन 15 किलो मीटर दूर स्थित थाने पहुँचे तो उन्हें बताया गया कि साहब अभी व्यस्त हैं कल आना। अब उनको डर है की उन्हें किसी मामले में यह कहकर फंसाया जा सकता है कि उनका पहचान पत्र किसी वारदात की जगह पर 'पाया गया'। उनको डर है कि आगे अगर किसी पहरा दे रहे बल ने उन्हें रोका, तो उनके पास दिखाने के लिए कुछ नहीं होगा और वह किसी बड़ी मुसीबत में फंस जाएंगे।

इन रोज़मर्रा के डरों के चलते, धान की खेती में काफी हद तक गिरावट हुई है। गाँव वालों का कहना है कि वे उतना ही उगाते हैं जो उनके अपने खाने के लिए पूरा हो जाए। उन्हें बाहर ज़्यादा समय बिताने में डर लगता है क्योंकि अगर कोई गश्ती दल उन्हें मिल गया तो वे परेशानी में पड़ सकते हैं। उन्हें डर लगता है कि उनको कभी भी उठा लिया जा सकता है, पीटा जा सकता है या किसी आपराधिक मामले में फंसाया जा सकता है। विशेष रूप से पुरुष बासागुड़ा बाज़ार जाने से भी कतराते हैं क्योंकि वहाँ एसपीओ घूमते रहते हैं और उनके इशारे पर सैनिकों द्वारा किसी को भी उठाया जा सकता है, और वह भी सिर्फ इस शक पर की कोई पुसबाका गाँव से है जो की कथित तौर पर एक नक्सली गाँव है। इस तरह न उनका आज सुरक्षित है और न ही भविष्य। गाँव वालों का यह भी कहना है कि पोलावरम बाँध से उनके गाँव समेत 300 गाँवों के डूबने का खतरा है। 'हमारा क्या होगा? क्या हमें बदले में ज़मीन मिलेगी? कहाँ मिलेगी? हम कैसे जीएंगे?' वे जानना चाहते हैं। वे परेशान हैं कि पहले जुडूम ने उन्हें बेघर किया और अब इस बाँध की वजह से उनका जीवन खतरे में है।

कोट्टागुडेम एक मुरिया बाहुल्य गाँव है। यहाँ पहुँचने के लिए 5 किलो मीटर तक फैले जंगलों के बीच से गुज़रना पड़ता है। हमें वहाँ पहुँचने में देरी हो गई थी इसलिए हमारे पहुँचने तक लोग खेतों में काम के लिए निकल चुके थे। वे काम से लौटते ही अपने आप मिलने के लिए आ गए। पूनम सुरेश, जो की आवापल्ली गाँव से आठवीं पास हैं, ने बताया की अक्टूबर 2014 में, पोलमपल्ली के एसपीओ शंकर उर्फ कोरसा जगराम और मुर्गुडा के ताती रमेश के नेतृत्व में 400 जवान गाँव आए थे। उन्होंने गाँव वालों को पीटा, जिससे 3 बच्चों समेत 9 लोग घायल हुए थे।

(खबरों के अनुसार (इन्डियन एक्सप्रेस 2 जनवरी 2015), शंकर उर्फ कोरसा जगराम ने, जो कि पश्चिमी बस्तर संभाग के मिलिटरी इंटेलिजेंस का प्रमुख था और प्रमुख बागियों में से एक था, मई 2013 में आत्मसमर्पण किया था और पुलिस विभाग में 'मुखबिर' बन गया था। उसको माओवादियों ने 1 जनवरी को कोट्टापल में मार दिया था।)

दमन की और भी कहानियाँ सुनने को मिलीं। जैसे ओयाम भीमा और दोडी लकमा को जून 2013 में उठा लिया गया था, बुरी तरह यातनाएं दी गई थीं और दांतेवाड़ा जेल भेज दिया गया। भीमा तो अक्टूबर 2014 में छूट गये थे पर लकमा अभी जेल में हैं। उन्होंने बताया कि वकील बहुत सारा पैसा मांगते हैं। उदाहरण के लिए वकील कम से कम 1,000 रुपए और अगर चार्ज–शीट बन चुकी हो तो हर मामले में अभियोजन के लिए 20,000 रुपए की मांग करते हैं। उन्होंने बताया कि उनके लिए इतने रुपए जुटाना असंभव है। उन्होंने यह भी बताया कि आमूमन हर व्यक्ति पर एक से ज़्यादा मामले होते हैं। और हर मुकदमे की फीस अलग अलग होती है। इसके अलावा जेल में बंद व्यक्ति से हर पेशी के समय मिलने जाने के लिए भी परिवार को खर्चा करना पड़ता है। एक अन्य मामले में दोडी आयातु को 28 अगस्त को उस वक्त गोली मारकर हत्या कर दी गई थी जब वे नदी के पास झाड़ियाँ काट रहे थे। उनके पाँच बच्चे हैं। बासागुड़ा के थाना प्रभारी ने उनके परिवार को 2 लाख रुपए के मुआवज़े का आश्वासन दिया था। जब उनका परिवार थाना प्रभारी से मिलने पहुँचा तो उसने उनसे कहा कि अगर उन्हें रुपए चाहिए तो उन्हें किसी पत्रकार को बुलाना होगा जो इस घटना के बारे में लिखे। एक अन्य घटना के बारे में भी गाँव वालों ने बताया। अक्टूबर 2014 में एक महिला का बलात्कार हुआ था। उस समय भी सुरक्षाकर्मी राह में मिले एक व्यक्ति की 10 मुर्गियाँ, 10 अंडे और 150 रुपए नकद छीन कर ले गए थे।

गाँव वाले बीजापुर के बाहर लोगों को बताना चाहते हैं कि उन्हें कैंप नहीं चाहिए। वे कहते हैं, 'उनसे कहो कि यह पहरेदारी बंद कर दें ताकि हमारा रोज़–रोज़ का उत्पीड़न बंद हो।' जब गाँव वालों से पूछा गया कि क्या माओवादियों द्वारा सड़क तोड़े देने से उन पर कोई

दुष्प्रभाव हुआ है, तो उन्होंने माना कि यह सही है पर साथ ही उन्होंने कहा कि कैम्पों और पहरेदारी की वजह से पनप रही असुरक्षा से उन्हें सबसे ज़्यादा गुस्सा और डर है। पुसबाका और कोट्टागुडेम के लोगों के लिए सड़क टूट जाने के कारण एक तरफ सुरक्षा बलों को जंगलों में घुसने और कैंप लगाने पर रोक लगी है (जो वे चाहते हैं), वहीं दूसरी तरफ उनको स्वयं परेशानी का सामना भी करना पड़ा रहा है। बासागुड़ा को चेरला से जोड़ने वाली सड़क अभी भी चालू है पर अब सफर बहुत मुश्किल हो गया है। लोग आज भी बासागुड़ा से चेरला तक मिर्ची के खेतों में मज़दूरी करने और महुआ और तेंदू पत्ता बेचने जाते हैं। व्यापार आज भी संभव है, पर 2005 के बाद से आर्थिक गतिविधियों में कमी होने के कारण व्यापारिक सामग्रियों की मात्रा में कमी आई है, जिसके कारण लोग अब पहले के मुकाबले कम रुपए कमा पाते हैं। जिन दुकानों पर पहले तरह–तरह की सामग्री उपलब्ध हुआ करती थी, वे भी अब सीमित और कम मात्रा में सामग्री रखने लगे हैं।

पुसबाका में शाम को खाने के समय गाँव वालों ने अतीत के बारे में और अब अपने पूरी तरह से बदले हुए जीवन के बारे में बात की। सलवा जुडूम उन के सामूहिक जीवन में एक ऐसी ऐतिहासिक घटना थी, जिसने उनके जीवन को अतीत और आज में विभाजित कर दिया। बहुत से लोगों ने कहा कि जुडूम हम लोगों में से नहीं उभरा था बल्कि बाहर से आया था। उन्होंने बताया कि कैसे जुडूम के तहत अन्य इलाकों से लोगों को इस्तेमाल करके गाँवों पर हमले करवाए जाते थे। उन्होंने बताया कि कैसे जुडूम के कारण गाँव वाले विस्थापित हो गए और उन्हें घर छोड़ कर भागना पड़ा। लौटने पर हर परिवार को केवल एक–एक सौर्य लैंप दिया गया।

लिंगागिरी और कोरसागुड़ा – कोरसागुड़ा जंगल के बीचों–बीच है और बैलाडिला पहाड़ियों के पास है। लिंगागिरी कोरसागुड़ा के नीचे मैदानी इलाके में स्थित है। 29 दिसम्बर को राजपेटा से 2 किलो मीटर पहले पेचेपारा टोला पर, गाँव वाले उसी सुबह हुई एक घटना के बारे में जानकारी देने के लिए इंतज़ार कर रहे थे। मालूम चला कि एक पड़ोसी के भाई (बड़े पिताजी के बेटे) को उठा लिया गया था। सुबह 5 बजे पुलिस आई, कृष्णा के घर में घुसी, हर व्यक्ति, पुरुषों, महिलाओं व बच्चों को जगाया और कहते रहे की उनके पास सोयम पोट्टी के नाम का वारंट है और वे उसकी तलाश कर रहे हैं। कुछ गाँव वाले सोयम पोट्टी की गिरफ़्तारी के विरोध में पुलिस के पीछे–पीछे बासागुड़ा तक गए। एक शोधकर्ता वाणी खाखा भी थाने पहुँचीं। वाणी को थाना प्रभारी ने बताया कि उन्होंने किसी को गिरफ़्तार नहीं किया है। वे तो बस सोयम पट्टी को चाय और बातचीत के लिए बुला रहे थे। वाणी ने कहा कि यह किसी को चाय पर बुलाने का बड़ा ही अटपटा तरीका है – पहले किसी के घर में जबरन घुस जाना, ज़बर्दस्ती सबको जगाना और फिर किसी व्यक्ति को संदिग्ध बताकर थाने ले आना। थाना प्रभारी ने इसका कोई जवाब नहीं दिया। जब पूछा गया कि क्या सोयम के खिलाफ कोई स्थाई वारंट (देखें बॉक्स 3 स्थाई वारंट) है, तो थाना प्रभारी ने मना कर दिया। फिर सोयम पोट्टी को छोड़ दिया गया। इसी बीच बिल्लिपारा से दो लोगों को गिरफ़्तार कर लिया गया – ओयाम सोम्लू पिता पांडू और पूनम चीनू पिता आयतु इन दोनों के खिलाफ 3 मामले दर्ज़ थे।

कोरसागुड़ा में घुसते ही गाँव वालों ने बताया कि पुलिस सड़कों पर बम ढूँढ रही है। इसीलिए हमें अपना रास्ता बदलना पड़ा और पहले लिंगागिरी जाना पड़ा। ऐसा सुनने में आया था कि कुछ दिन पहले लिंगागिरी से 12 लोगों को उठा लिया गया था।

लिंगागिरी तक का रास्ता बंजर खेतों और कुमारपारा के आधे खाली हो चुके दोल्गुदा नामक एक माहार गाँव के बीच से होकर गुज़रता है। दोल्गुदा से 30–35 लोग 2005 में एसपीओ बन गए थे और उनके परिवार तब से गाँव छोड़कर चले गए थे। सलवा जुडूम के कारण लिंगागिरी को भी खाली कर दिया गया था, पर 2009 में लोग वापस लौट आए थे। लिंगागिरी में लोग धान को भूसी से अलग करने और उसे बाज़ार ले जाने के लिए ट्रेक्टर पर लादने में व्यस्त थे। उन्होंने कहा कि इस समय उनकी सबसे बड़ी चिंता यह है कि लोग बहुत बीमार पड़ रहे हैं। बीसियों लोग बीमार पड़े थे और उल्टियाँ कर रहे थे। उनको डर था कि यह मलेरिया हो सकता है। कोई डॉक्टर उपलब्ध नहीं था। दवाई देने के लिए केवल मितानिन ही उपलब्ध थी। कैंप के बारे में पूछने पर लोगों ने बताया कि इनके कारण उनका जीवन और ज़्यादा असुरक्षित हो गया है। उनके अनुसार सारकेगुड़ा कैंप में कम से कम 3500

सैनिक हैं। पहरेदारी अब आम बात हो गई है। हालांकि हाल में कोई घटना नहीं हुई थी, पर सैनिकों के आस पास रहने से किसी न किसी घटना के होने का खतरा बना ही रहता है। जब 12 व्यक्तियों के उठाये जाने के बारे में पूछा गया तो उन्होंने कहा कि केवल 5 व्यक्तियों को कैंप में 'बेगार' करने के लिए उठाया गया है। जब पूछा गया कि क्या बिना वेतन का काम आम बात है तो उन्हें हामी में अपने सर हिला दिए।

35 वर्षीय घंटल राजू कड़वाहट से भरा था। दिसम्बर 2006 में सैनिकों ने उसकी बहन के साथ बलात्कार कर के उसकी हत्या कर दी थी। उसके पिता को भी मार दिया गया था। पर उसका गुस्सा उन लोगों के प्रति था जिन्होंने गाँव वालों को लौटने और दोबारा यहाँ बसने के लिए प्रोत्साहित किया। उसने भी उन संस्थाओं के साथ काम किया था जिन्होंने गाँव वालों को प्रोत्साहित किया था। उसने आरोप लगाते हुए कहा कि जिन संस्थाओं ने लोगों को वापस लौटने के लिए कहा था, उन्होंने पुनर्वास का वादा भी किया था, पर उनके लौटते ही इन संस्थाओं ने गाँव वालों को उनके हाल पर छोड़ दिया। उसने बताया कि उसने वनवासी चेतना आश्रम नामक संस्था के साथ काम किया था। उसने कहा कि जब बाहरी लोग अपने वादे पूरे नहीं करते तो विरोध करना और अपने अधिकारों के लिए खड़े होना भी बेकार है। उसने कहा, 'देखो आज मेरी क्या हालत हो गई है। मैं पहले से भी ज़्यादा गरीब हो गया हूँ। अगर मैं आंध्र प्रदेश में ही रह जाता तो ज़्यादा कमा रहा होता। मुझे तो लगता है कि उन्होंने हमें धोखा दिया है।' जब वह यह सब कह रहा था तो बाकी लोग बिना कुछ कहे सर हिलाकर हामी भर रहे थे। पास बैठे लोगों ने एक बार भी उसकी बात को नहीं झुठलाया, तब भी नहीं जब उसने यह कहा कि उसका सारा विरोध बेकार हो गया क्योंकि कोई गाँव वाला उसके साथ खड़ा नहीं रहा। अब जब भी वह गाँव से बाहर जाता है तो सीआरपीएफ के सैनिकों के ताने सुनता है। जब वह उनके पास से गुज़रता है तो वे ज़ोर ज़ोर से ताने कसते हैं – 'वो जा रहा है घंटल। साला बहुत बात करता है। अबकी बार ऐसा मारेंगे साला दोबारा भाग जाएगा।'

उसके इन आरोपों को सत्यापित नहीं किया जा सका। यह भी स्पष्ट नहीं हैं कि अन्य सभी लोग भी ऐसा ही सोचते हैं या नहीं। क्योंकि किसी ने साफ़–साफ़ ऐसा नहीं कहा। पर लिंगागिरी में किसी ने इसके उलट भी कुछ नहीं कहा। यह भी सच है कि जो लोग अपने गाँव वापस लौटे थे वे आज खुद ही अपनी रक्षा और बचाव कर रहे हैं।

इसके बाद पीयूडीआर का दल **कोरसागुड़ा** पहुँचा जो की एक मुरिया बाहुल्य गाँव है। यह वह गाँव है जिस पर 2005 में सबसे पहले हमला हुआ था और जिसको जला दिया गया था। गाँव वाले बचने के लिए जंगल के अन्दर भाग गए थे। वे जंगल के और भी भीतर पहाड़ियों पर जा बसे थे। सबसे पहले 2009 में ये ही लोग पुनर्वास के लिए वापस लौटे थे। पहले के 90 में से 80 परिवारों ने पहाड़ियों के पास ही नए घर बना लिए थे। अब सुरक्षा बल उतनी बारंबारता से नहीं आते जितना कि पहले आया करते थे।

गाँव वालों ने बताया कि पहले वे गाँव में ही आश्रम स्कूल के पास रहते थे। मुरिया जनजाति के अलावा और भी समुदायों के लोग उनके बीच रहते थे, जैसे महार या तेलगु। जुडूम के आने से पहले वे सभी वहाँ रहते थे। उन्होंने बताया, 'सलवा जुडूम के बदमाश आये थे और उन्होंने सारे घर जला दिए। सलवा जुडूम के आने के बाद ही हमें और अन्दर जाकर रहना पड़ा था।' उन्होंने कहा कि, 'आज अगर कोई भी पुरुष बासागुड़ा बाज़ार जाते हैं तो उन्हें सैनिकों द्वारा उठा लिए जाने की संभावना रहती है। फिर हमें पटेल या सरपंच की मदद से उन्हें थाने से छुड़वाना पड़ता है।' कुछ अन्य लोगों ने बताया कि जुडूम के डर से कुछ लोग आंध्र प्रदेश भी गए थे पर वे पड़ोस के गाँव वालों के साथ लौट आए। उन्होंने बताया, 'जब हम वापस लौटे तो हमने पाया कि हमारे सभी मवेशी गायब थे। जब भी हम अपने मवेशियों को ढूँढने निकलते तो सीआरपीएफ द्वारा हमें पकड़ कर पीटा जाता।' यह भी बताया गया कि एक बुजुर्ग व्यक्ति को सलवा जुडूम ने उठा लिया था और उसकी पिटाई की थी। जब वह लौटा तो वह बेहोश हो गया और मर गया। उन्होंने कहा, 'हमें समझ नहीं आया की हम क्या करें इसलिए हम चुप रह गए।'

गाँव वालों ने बताया कि कैसे काकेम मुन्निवास की 18 नवम्बर 2012 को गोली मार कर हत्या कर दी गई जब वे खेतों में निराई कर रही थीं। उन्होंने कमीज़ और पतलून पहनी थी जैसा कि आंध्र प्रदेश में खेतों में काम करते समय महिलाएं आम तौर पर पहनती हैं।

उनके शव को थाने ले जाया गया और फिर लौटाया गया। पुलिस ने उसी गाँव से हेमला भीमा को गिरफ़्तार किया और उनको 3 दिनों तक हवालात में रखकर उल्टा लटकाकर पीटा। इस के बाद हेमला चिन्नू को गिरफ़्तार किया गया जिन पर अभी तक दांतेवाड़ा में मुकदमा जारी है। हेमला भीमा ने बताया, 'हाल में 29 दिसंबर को सीआरपीएफ गश्ती के दौरान हमारे (ताती दसरू, ताती बम्मा और पदम सुक्कू के) चाकू ले गए जो हम ताड़ी इकट्ठा करने के लिए प्रयोग करते हैं। जब हमने पूछा कि हमारे चाकू क्यों ले जाए जा रहे हैं तो उन्होंने हमें पीट दिया।' हेमला भीमा ने बताया, 'जब सीआरपीएफ/पुलिस गश्ती के लिए आते हैं तो वे हमारे धनुष और बाण, चाकू, कुल्हाड़ी ले जाते हैं, फिर हमें नए जोड़े खरीदने पड़ते हैं। हमारे लिए बार–बार ये चीज़ें खरीद पाना मुश्किल होता है। हमारी रोज़ के काम की चीज़ें हमसे क्यों छीनी जाती हैं? सारकेगुड़ा में सीआरपीएफ का जो कैंप है वह हमारी पट्टे की ज़मीन पर है। जिस तालाब में हम हमेशा मछली पकड़ा करते थे वह अब उनके कब्ज़े में है। हमारे आम, इमली के पेड़ अब सब उनके हैं। अगर हम वहाँ जाते हैं तो वे हमें पीटते हैं। हम चाहते हैं कि वह कैंप वहाँ से हटाया जाए।' गाँव वाले चाहते थे कि इस रिपोर्ट का ज़्यादा से ज़्यादा प्रसारण हो और बुलाए जाने पर वे दिल्ली आने के लिए भी तैयार थे।

तीमापुर गाँव (30 दिसम्बर) – हर गाँव की तरह यहाँ भी भूसी अलग करने का काम चल रहा था। स्कूलों में मध्य–वर्षीय परीक्षाएं हो रही थीं। तीमापुर गाँव में 6 पाड़े हैं। ये उन कुछ गाँवों में से एक हैं जहाँ के लोग सलवा जुडूम के दिनों में भी गाँव छोड़कर नहीं गए थे। जब पूछा गया कि गाँव वाले विस्थापन से कैसे बच पाए, तो उन्होंने जवाब दिया की उन्होंने तय कर लिया था की वे गाँव को किसी भी कीमत पर, किसी भी परिस्थिति में खाली नहीं करेंगे और यह बात उन्होंने सलवा जुडूम के नेताओं को भी बता दी थी। गाँव वालों का मानना है की संख्या में ज़्यादा होने के कारण वे सलवा जुडूम रूपी सज़ा से बच पाए। इस गाँव में 360 परिवार हैं।

हमें बताया गया कि 11 लोगों को दो हफ्ते पहले दिसंबर 2014 में समर्पण (सरेंडर) करवाया गया था। हालांकि सरेंडर की यह कहानी सच तो नहीं निकली पर पता चला कि असल में 5 लोगों को तीमापुर से गिरफ़्तार कर दांतेवाड़ा भेज दिया गया था – पदम सानू पुत्र पदम लखमू, पदम लखमू पुत्र पदम बुधराम, अवलम मंगू पुत्र अवलम लखमू, पदम जगदीश पुत्र पदम् सेंटिया, ओयाम मंगू पुत्र ओयाम लखमू। बातों – बातों में सर्वव्यापी 'परमानेंट वारंट' का फिर से ज़िक्र हुआ। कोई भी गाँव वाला यह नहीं बता पाया कि उनके खिलाफ क्या आरोप थे, किन अपराधों के लिए आईपीसी की कौन सी धाराएं लगाईं गई थीं? तीमापुर में अधिकतर लोग (और अन्य सभी गाँव के लोग भी) 'वारंट' के कारण मंडरा रहे खतरे से बहुत उत्तेजित थे। उनकी नज़र में ये वारंट उनको फसाने का एक ज़रिया हैं।

एक गाँव वाले ने, अपना नाम गुप्त रखने की शर्त पर, जेदिपाड़ा के लोगों से उन्हें पता चली एक घटना के बारे में बताया। करीब दो हफ्ते पहले (मध्य दिसंबर के आस–पास), सुरक्षा बल तीमापुर के एक टोले जेदिपाड़ा में घुस आए थे। सभी पुरुष भाग निकले। महिलाओं, बुजुर्गों और बच्चों को पीछे छोड़ दिया गया था। उसने बताया की महिलाओं के साथ बद्तमीज़ी की गई थी। यह बताते हुए उसका पतला बदन गुस्से से कांप रहा था। गुस्से में उसने कहा की सुरक्षाकर्मियों ने औरतों का बलात्कार किया था। वह बार बार कह रहा था कि महिलाओं के साथ 'कुकर्म किया' गया।

वह कहता रहा, 'सैनिकों को लोगों की सेवा करने के लिए भेजा गया है तो वे महिलाओं के साथ बद्तमीज़ी क्यों करते हैं?' उसने स्वयं देखा था कैसे एक महिला को उसके बच्चे सहित थाने ले जाया गया। थोड़ी थोड़ी देर में सैनिक उसकी छातियों को छूते थे और कुछ अपनी बंदूकों को उसके पीछे भोंक रहे थे। महिला को सड़क के रास्ते से तीमापुर कैंप ले जाने की जगह वे उसे जंगल के रास्ते से ले गए। हम सोच ही सकते हैं कि ऐसा उन्होंने क्यों किया होगा?' उसने बताया कि सारकेगुड़ा हत्याकांड के बाद, पत्रकारों और मानव अधिकार संगठनों के आने से उन्हें कुछ राहत मिली थी। और अगर ये संगठन और व्यक्ति न आते तो उनकी हालत और भी बदतर होती। उसने कहा कि लोग सैनिकों से डरते हैं और सैनिक लोगों पर शक करते हैं। उसको भी अक्टूबर 2014 में तब उठा लिया गया था जब तीमापुर के पास बन रही एक सड़क पर एक बम विस्फोट हुआ था। जब उसने विरोध जताते हुए कहा, 'हम अपने ही घरों के सामने बम क्यों लगायेंगे?' तो उसको चुप करा दिया गया। उसे यकीन था कि 'ये

तालिका 2 : बीजापुर जिले में सुरक्षा बलों द्वारा किये गए उल्लंघनों की घटनाएं (नवम्बर 2012 से दिसंबर 2014)			
क्रमांक	**गाँव**	**तारीख**	**विवरण**
1	कोरसागुड़ा	18 नवम्बर, 2012	काकेम मुन्निवास नाम की एक लड़की की खेतों में गोली मार कर हत्या कर दी गई। उसके शव को थाने ले जाया गया। पुलिस ने हेमला भीमा को मामले के सिलसिले में गिरफ़्तार किया। उन्हें 3 दिन जेल में यातनाएं दी गईं। और बाद में छोड़ा गया। एक अन्य व्यक्ति हमला चीनू को भी गिरफ़्तार किया गया। दांतेवाड़ा में मुकदमा चल रहा है।
2	*पिडिया और डोडी तुमनार	21–23 जनवरी 2013	बीजापुर जिले के गंगालूर के पास स्थित पिडिया गाँव और डोडी तुमनार गाँव पर पुलिस, सीआरपीएफ, सीएएफ़ और कोबरा बलों ने हमला किया और वहाँ भारी विनाश किया। पिडिया गाँव में वे घरों में घुस गए, उन्हें लूट लिया और बाद में 20 घरों को तोड़ डाला। डोडी तुमनार में सुरक्षा बलों ने क्रांतिकारी जनताना सरकार द्वारा चलाए जा रहे लड़कियों और लड़कों के एक आश्रम वाले स्कूल को तोड़ डाला।
3	* कोरसेली	24–25 फरवरी 2013	अर्धसैनिक बलों, छत्तीसगढ़ पुलिस और एसटीएफ ने कोरसेली गाँव (बीजापुर जिले का गंगालूर क्षेत्र) पर हमला किया। कामरेड सलीम (सामी रेड्डी), जो कि एक साधारण जीवन वहन कर रहे थे, को पकड़ लिया और अगले दिन आवुनार गाँव के पास गोली से मार दिया गया।
4	* कांचल	9 मार्च 2013	कंजम देव नाम की एक महिला आंध्र प्रदेश के ग्रे हाउंडस की गोलीबारी में मारी गईं और एक अन्य महिला घायल हो गईं। हमला उस समय हुआ जब वे दोनों पानी एक स्त्रोत पर पानी लेने गई थीं। बाद में वे कुंडाम देवी का शव और घायल महिला को एक हैलीकॉप्टर में ले गए, दोनों को वर्दी पहना दी और उन्हें नक्सलवादी घोषित कर दिया।
5	* इडसमेता	17 मई 2013	सीआरपीएफ के बलों ने 8 आदिवासियों को मार डाला जिसमें से 4 नाबालिग थे। चार अन्य लोग घायल हुए।
6	कोट्टागुडेम	जून 2013	ओयम भीमा और दोडी लकमा को सुरक्षा बलों ने उठा लिया और क्रूर यातनाएं दीं। उन्हें दांतेवाड़ा जेल भेज दिया गया। लकमा अभी भी जेल में बंद हैं।
7	कोट्टागुडेम	28 अगस्त 2014	दोडी आयातु को गोली से मार दिया गया। बासागुड़ा के थाना प्रभारी द्वारा 2 लाख रुपयों के मुआवज़े का वादा किया गया जो कि आज तक पूरा नहीं हुआ है।
8	कोट्टागुडेम	अक्टूबर 2014	पोलमपल्ली गाँव के एसपीओ शंकर और मुरगुडा के ताती रमेश के नेतृत्व में एक सुरक्षा बल गाँव आया और उसने 3 बच्चों समेत कई एक गाँव वालों की पिटाई की, जिससे 9 लोग घायल हो गए।
9	कोट्टागुडेम	अक्टूबर 2014	एक महिला के साथ बलात्कार हुआ। और जानकारी उपलब्ध नहीं है।
10	पुसबाका	अक्टूबर 2014	एसपीओज़ द्वारा चोरी, लूट, प्रचंड विनाश। मुर्गियों और अनाज की चोरी, ज़बर्दस्ती घरों में घुसे, बर्तन तोड़े। दिवाली के आसपास एक एक एसपीओ को हर घर में सुलाने के लिए गाँव वालों के साथ ज़बर्दस्ती।
11	* छोटे तोंगपाल	26 नवम्बर 2014	पुलिस द्वारा गाँव वालों को पीटा गया। कई एक की हड्डियाँ टूटीं। 26 गाँव वालों को उठाया गया पर 15 को गिरफ़्तार किया गया। गाँव वालों ने पुलिस के खिलाफ एफआईआर लिखाने की कोशिश की, पर मना कर दिया गया।

12	सारकेगुड़ा	15 दिसम्बर 2014	इरपा कृष्णा, इरपा बाबूराव, इरपा कन्ना के पिता इरपा नागेश, मोदिम दिनेश, इरपा महेश, इरपा गणपत, इरपा चंद्रेश के पिता इरपा नागेश, मदकम नागेश, इरपा लच्छा, इरपा मनोज, को कोबरा यूनिट के कैंप तक हाथ बांध कर धक्के मार कर ले जाया गया। उन्हें धमकियाँ दी गईं। कैंप में उनसे झाड़ियाँ कटवाई गईं।
13	जेदिपाड़ा, तीमापुर के पास	15 दिसम्बर 2014	सुरक्षा बलों ने महिलाओं के साथ बलात्कार किया। अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है।
14	* छोटे तोंगपाल	20 दिसंबर 2014	गाँव के पूर्व सरपंच मुक्का कवासी को 20 दिसंबर 2014 को गिरतार कर लिया क्योंकि उन्होंने मीडिया से जबरन सरेंडर और प्राथमिकी न दर्ज़ करने के बारे में बात की थी।
15	पेचेपारा, राजपेटा के नज़दीक	29 दिसम्बर 2014	सुबह 5 बजे पुलिस कृष्णा के घर में घुस गई। पुलिस ने कहा कि उनके पास सोयम पट्टी के लिए वारंट है और उसकी तलाश में है। सोयम पट्टी को बाद में गाँव वालों के दखल के बाद छोड़ा गया।
16	* बासागुड़ा थाना क्षेत्र	29 दिसम्बर 2014	पुलिस ने 32 लोगों को नक्सली होने का आरोप लगा कर गिरतार किया। सबके खिलाफ़ स्थाई वारंट थे।
17	कोरसागुड़ा	29 दिसम्बर 2014	सीआरपीएफ के अर्धसैनिकों ने ताड़ी इकट्ठी करने के चाकू ज़ब्त कर लिए। जब्ती के बारे में पूछने पर गाँव वालों को पीटा गया।
18	तीमापुर	दिसम्बर 2014	पदम सानू पुत्र पदम लखमू, पदम लखमू पुत्र पदम बुधराम, अवलम मंगू पुत्र अवलम लखमू, पदम जगदीश पुत्र पदम् सेंटिया, ओयाम मंगू पुत्र ओयाम लखमू को गिरफ्तार किया गया। सबको दांतेवाड़ा जेल में भेजा गया। किसी को मालूम नहीं है कि उन पर क्या आरोप लगाए गए। गाँव वालों के मन में 'स्थाई वारंट' का डर है।
19	बिल्लीपारा	दिसम्बर 2014	दो लोगों पांडू के बेटे ओयाम सोम्लू और आयतू के बेटे 25 वर्षीय पूनम चीनू को पुलिस स्टेशन ले गए। दोनों के खिलाफ तीन तीन मामले।
20	लिंगागिरी	दिसम्बर 2014	कैंप में बेगार करने के लिए पाँच लोगों को उठाया गया।
नोट – जहाँ चिन्हित नहीं किया गया है, वह जानकारी गाँव वालों से मिली है। यह दावा नहीं किया जा रहा है कि यह सूची सम्पूर्ण है। जहाँ ' चिन्ह का प्रयोग किया गया है वह जानकारी तालिका के अंत में दी गई सूची से ली गई है।			

Sources:Anil Mishra, "Another Volley of Bullets for Bastar'sTribals": http://www.tehelka.com/another-volley-of-bullets-for-bastars-tribals/;Bela Bhatia, "Police Complaint to In-Charge,Gangalur PS,Regarding Burning of Houses And Destruction of Households in Pidia Village: http://sanhati.com/ articles/6101/; DSU (Democratic Students' Union), "Chhattisgarh—Preliminary Report on the Fact Finding inBijapur":http://sanhati.com/articles/6231/; Suvojit Bagchi, "In South Bastar, grim battles on to retake Maoist bases :http://www.thehindu.com/todays-paper/tp-national/in-south-bastar-grimbattles-on-to-retake-maoist-bases / article4734555.ece; Press Releases of CPI (Maoist) http://www.bannedthought.net/India/ CPI-Maoist Docs/ #2013); Supriya Sharma, "An Ill SowingFestival":http://www.outlookindia.com/printarticle-aspx?285796 and, "Villagers Dispute Claims ofAndhra Police in Chhattisgarh Encounter": http://timesofindia.indiatimes.com/india/Villagers-dispute-claims-of-Andhra-police-in-Chhattisgarh-encounter/articleshow/19002528.c; SeeAlso: http://khabar-ndtv-com/video/show/news/bastar-tribals-forced-to-surrender-348926; And, http://naidunia.jagran.com/search/bijapur

सिलसिला जारी रहेगा'। उसकी नज़र में ये सब जल्दी खत्म नहीं होने वाला। एक बार लोगों को कपड़े और बर्तन लेने के लिए कैंप पर बुलाया गया था। जब वे गए तो बर्तन और कपड़े देने की जगह, उनमें से 14 लोगों को उठा लिया गया, जिनमें से 9 लोगों को छोड़ दिया गया पर 5 को गिरफ़्तार कर लिया गया (इनके नाम ऊपर दिए गए हैं)। उसने कहा, 'इससे क्या पता चलता है? यही कि पहले वे लोगों को लालच देते हैं और फिर उन्हें गिरफ़्तार कर लेते हैं।

उसने सवाल किया कि जब माओवादी 'आतंकवादी' होते हैं, तो सरकार ने 'संघम' के सदस्यों और माओवादियों को एसपीओ की सूची में क्यों डाला? कितना आसान है फौज द्वारा किसी को भी मार डालना, उसको वर्दी पहना देना और फिर ये कहना की उन्होंने एक नक्सलवादी को मारा है।' उसे चिंता थी कि अगर उसका नाम कहीं पता चल गया तो उसको फौज और पुलिस के खतरे का सामना करना पड़ जाएगा।

2 युद्ध–क्षेत्र में जीवन के कुछ पहलू – सड़कें, यातायात और कैंप

युद्ध से सबसे पहले सच का खातमा होता है। और इस तथ्य को नकारना कि असल में कोई सशस्त्र संघर्ष जारी है, धोखा है। सरकार जानती है कि बस्तर एक युद्ध–क्षेत्र है। यहाँ दो सैन्य बल हैं राजकीय और गैर राजकीय, यानी सरकार और पीएलजीए (पीपल्स लिबरेशन गुरिल्ला आर्मी), ये दोनों ही किसी भी मुठभेड़ के समय अपनी–अपनी वर्दी पहनते हैं जो इन्हें अन्य नागरिकों से अलग करती है। जिनिवा कन्वेंशन के ऐडीशनल प्रोटोकॉल 1 का 48वाँ अनुच्छेद उन सिद्धांतों को सपष्ट रूप से परिभाषित करता है जिन पर युद्ध के कानून आधारित होते हैं :

' आम नागरिक आबादी और उनकी वस्तुओं की सुरक्षा और उनके सम्मान को सुनिश्चित करने के लिए यह ज़रूरी है कि संघर्ष में लगे सभी दल हमेशा आम नागरिकों और योद्धाओं, नागरिकों की वस्तुओं और फौज की वस्तुओं के बीच फर्क करें और इन्हें ध्यान में रखते हुए ही केवल फौजी उद्देश्यों के खिलाफ अपनी कार्यवाही चलाएं '।

परन्तु आदिवासियों द्वारा दी गई जानकारी के अनुसार बस्तर में देश के सशस्त्र बल इस तथ्य को पूरी तरह से नज़रअंदाज़ कर रहे हैं कि यह एक युद्ध–क्षेत्र है। वे कई तरह से रोज़ाना ऊपर बताए गए सिद्धांतों की अवहेलना करते हैं। आम आदिवासियों को पीएलजीए के काडर द्वारा पहनी जाने वाली वर्दी पहना कर उन्हें माओवादी बता देना इसका एक उदाहरण है।

सड़क पर अवरोधक / चैक पोस्ट (पड़ताल चौकी) – क्षेत्र वर्चस्व की पूरी रणनीति इस सोच पर आधारित है कि इसका अर्थ है पूरे क्षेत्र में बड़ी तादाद में सैन्य दल तैनात कर दिए जाएं। इसलिए नए कैंप लगा कर और कंपनी व बटैलियन की शक्ति बढ़ा कर सैन्य प्रभुत्व स्थापित करना इसका एक हिस्सा है और सैन्य बोलचाल में 'रैड ज़ोन' माने जाने वाले वन क्षेत्र के अंदर नियमित (रोज़ाना या कुछ अंतराल पर) गश्त लगाना दूसरा। कैंप राजमार्गों पर भी हैं और वन गाँवों के अंदर भी। बीजापुर और बासागुड़ा के बीच की 50 किलो मीटर की दूरी में 7 कैंप हैं जिनमें से एक सारकेगुड़ा के अंदर है। ब्लॉक में बहुत सारे पुलिस स्टेशन हैं। सैन्य बल हथियारों से लैस हैं और वे अपने कैंपों के बाहर बने चैक पोस्ट और अवरोधकों द्वारा सड़क यातायात को भी नियंत्रित करते हैं। सीआरपीएफ द्वारा हर सुबह सड़क खोलने की प्रक्रिया से पहले यातायात चालू नहीं होता। बीजापुर और बासागुड़ा के बीच दिन में केवल तीन बसें चलती हैं, सुबह 7 और 9 बजे और दिन में 3 बजे। बीजापुर और बासागुड़ा के बीच स्थित सड़कों पर बने कई सारे चैक पोस्ट के कारण यातायात में बाधा पड़ती है। ये सुरक्षाकर्मी सड़क पर से गुज़रने वाले किसी भी व्यक्ति से उसकी पहचान, वे कहाँ जा रहे हैं, किस लिए जा रहे हैं, किससे मिलने वाले हैं आदि सभी कुछ पूछ सकते हैं। आदिवासियों को यह सब अपनी 'रक्षा' किए जाने जैसा बिलकुल भी नहीं लगता। जब उनसे सड़क बनने के बारे में पूछा गया तो उनके जवाब से साफ़ था कि अगर सड़क बनाने का उद्देश्य और सैन्य बल लाया जाना व और कैंप स्थापित करना है तो वे इसके खिलाफ हैं।

सड़कें किसके लिए और कहाँ के लिए – 6 दिसम्बर 2014 को छत्तीसगढ़ पुलिस के ऐडीशनल

डीजी आरके विज ने इंडियन ऐक्सप्रैस में लिखा, 'ऐसे खाली इलाकों में घुसने के लिए और माओवादी आंदोलन पर रोक लगाने के लिए और कैंप लगाए जाने ज़रूरी हैं। अगले साल तक मोबाइल टावर लगाने से सुरक्षा कैंपों के बीच दूरसंचार संपर्क बेहतर हो सकता है पर सड़क निर्माण अभी भी बड़ी चुनौती है। सुरक्षा कैंपों तक पहुँचने वाली सड़कें आपूर्ति सुनिश्चित करने (सप्लाई लाइन) और अन्य प्रशासनिक ज़रूरतों के लिए ज़रूरी हैं।'

सैन्य बलों के लिए आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए सड़कों के इस्तेमाल की बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि सड़क निर्माण के पीछे असली उद्देश्य क्या है। मंशा और अधिक सुरक्षाकर्मी तैनात करने और कैंप स्थापित करने की है और उनके लिए 'सप्लाई लाइन' सुरक्षित करना बेहद महत्वपूर्ण है। और अधिक सैन्य बलों की तैनाती द्वारा क्षेत्र वर्चस्व स्थापित करने के संदर्भ में सड़क निर्माण और अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है।

सड़कों पर अधिक संख्या में सैन्य बलों की उपस्थिति और उन पर लगे अवरोधक लोगों को और अधिक असुरक्षित बना देते हैं। इस तरह इस क्षेत्र में सड़क निर्माण भी एक विडम्बना है।

सार्वजनिक वाहनों में सैन्य अधिकारियों का घूमना – इन क्षेत्रों में सरकारी सैन्य बलों का सार्वजनिक वाहनों में घूमना रोज़मर्रा का मामला है। यह सशस्त्र संघर्ष के डूस और डोन्टस (क्या करना चाहिए और क्या नहीं) के बुनियादी सिद्धांतों की अवहेलना है। रोम स्टेट्यूटज़ के इंटर्नेशनल क्रिमिनल कोड (आईसीसी) के अनुच्छेद 8 में वार क्राइम (युद्ध अपराध) को परिभाषित किया गया है। इसकी धारा 2 की उपधारा (ई) राज्य की सीमा में सरकारी अथोरिटी और किसी संगठित सशस्त्र समूह या संगठित समूहों के बीच लम्बे समय से चल रहे संघर्ष के संबंध में है (देखें उपधारा (एफ))। धारा 2 की उपधारा (ई)(i) नागरिक आबादी के खिलाफ या किन्हीं आम नागरिकों, जो कि किसी भी शत्रुता में शामिल न हों, के खिलाफ किसी भी तरह के हमले को गैरकानूनी करार देती है। धारा 2(सी) 'ऐसे सशस्त्र संघर्ष के संबंध में है जिसका अंतर्राष्ट्रीय चरित्र न हो'। धारा 2(सी) उन व्यक्तियों के प्रति, जो कि किसी भी शत्रुता में शामिल न हो, निम्नलिखित कार्यकलापों को गैरकानूनी करार देती है – (1) किसी व्यक्ति या उसकी ज़िंदगी पर हिंसा, खासकर किसी भी तरह की हत्या, अंगभंग, क्रूर व्यवहार या यातना देना (2) व्यक्तिगत गरिमा पर हमला, खासकर किसी को अपमानित करना या नीचा दिखाना (3) बंधक बनाना।

इसी अनुच्छेद की धारा 2 की उपधारा (बी) (xxiii) में किसी स्थान, क्षेत्र या सैन्य बलों को सैनिक अभियानों से बचाने के लिए किसी नागरिक या किसी सुरक्षित व्यक्ति के इस्तेमाल को गैरकानूनी ठहराया गया है। इस तरह से आम नागरिकों का मानव आवरण की तरह से इस्तेमाल एक युद्ध अपराध है। (यह तर्क किया जा सकता है कि अगर हम कड़ाई से कानून की भाषा में बात करें तो अनुच्छेद 8 की धारा 2 की उपधारा (बी) अतर्राष्ट्रीय टकराव की स्थिति में लागू होती है परन्तु यह तार्किक ही है कि इसे आंतरिक सशस्त्र संघर्ष में भी लागू किया जाए)। जब सरकारी सैन्यकर्मी बासागुड़ा और बीजापुर के बीच सार्वजनिक बसों में चढ़ते हैं तो उन में यात्रा कर रहे आदिवासियों के ऊपर हर रोज़ यह अपराध होता है।

यह तर्क भी किया जा सकता है कि भारत पर आईसीसी लागू नहीं होता क्योंकि इसने इस पर हस्ताक्षर नहीं किए हैं। परन्तु आईसीसी में युद्ध के उन सभी डूस और डोन्टस को शामिल किया गया है जो कि जिनिवा कंवेशन और प्रोटोकॉल का हिस्सा हैं, और भारत ने जिनिवा कंवेशन पर हस्ताक्षर तो किए ही हुए हैं। और अगर भारत यह दावा करे कि वह तो आईसीसी द्वारा नियंत्रित नहीं है और वह जिनिवा कंवेशन और प्रोटोकॉल को नहीं मानता तो भी हमें कम से कम विवेक से तो काम लेना चाहिए। अगर सरकार इतनी भारी तादाद में नागरिकों के बीच सैन्य बलों को तैनात कर देती है तो यह सुनिश्चित करना सरकार की ज़िम्मेदारी बनती है कि ये सैन्य बल उन्हें किसी किस्म के खतरे में न डालें। अपने सैन्य अधिकारियों को यातायात मुहैया करवाना भी सरकार की ही ज़िम्मेदारी है। अगर वह ऐसा नहीं कर सकती तो उसे इन्हें वहाँ तैनात करने का कोई हक नहीं है। सुरक्षा बलों को इस बात की इजाज़त कतई नहीं दी जा सकती कि वे हथियार लिए हुए सार्वजनिक बसों में घूमें, आम नागरिकों का मानव आवरण की तरह इस्तेमाल करें और अपनी सुरक्षा के लिए अपनी यात्रा के पूरे समय में उन्हें लगभग बंधकों की तरह इस्तेमाल करें। और यह तथ्य कि सभी सुरक्षाकर्मी वर्दी में भी नहीं होते बल्कि उनमें से कई साधारण कपड़ों में भी होते हैं, उनके अपराध को और

भी बढ़ा देता है।

सार्वजनिक यातायात सुरक्षा बलों को कई तरह से सुरक्षा प्रदान करता है – (क) उनके अपने वाहनों को पीएलजीए के हमलों का खतरा होता है इसलिए उपलब्ध होने पर भी उनका इस्तेमाल करने से बचना उनके लिए बेहतर होता है, (ख) माओवादी आमतौर पर सार्वजनिक वाहनों को निशाना नहीं बनाते, (ग) किसी तरह का हमला होने पर वे नागरिकों का मानव आवरण की तरह इस्तेमाल कर सकते हैं। पर दूसरी तरफ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि सुरक्षाकर्मियों की उपस्थिति से बसों पर हमला होने की संभावना बढ़ जाती है। किसी तरह के वैकल्पिक साधन मौजूद नहीं होने के कारण आम नागरिकों के पास इन सार्वजनिक वाहनों के इस्तेमाल के अलावा कोई चारा नहीं होता। अपनी सुरक्षा के लिए आम नागरिकों को खतरे में डालना कायरता का काम है। और यह काम हर रोज़ हो रहा है।

उन सभी घटनाओं में जहाँ माओवादियों ने उन सार्वजनिक बसों पर हमले किए जिन में सुरक्षाकर्मी सफर कर रहे थे, वरिष्ठ पुलिस अफसरों ने यह स्वीकार किया कि स्टैंडिंग ऑपरेटिंग प्रोसीज़र (एसओपी) के अनुसार सुरक्षा कर्मियों के सार्वजनिक वाहनों में सफर करने पर रोक है। परन्तु किसी भी ऐसी घटना के बाद व्यक्ति विशेष सुरक्षाकर्मी पर एसओपी की अवहेलना का दोष लगा दिया जाता है। ध्यान रहे कि एसओपी का मुख्य उद्देश्य भी 'विद्रोहियों' तक जानकारी पहुँचने से रोकना होता है न कि नागरिकों को किसी भी तरह के खतरों से बचाना। एसओपी में यह भी निहित नहीं है कि सुरक्षाकर्मियों को अपनी सुरक्षा के लिए आम नागरिकों का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। ऐसी कई घटनाएं हो चुकी हैं जिनमें नागरिकों को मानव आवरण की तरह या बंधकों की तरह इस्तेमाल किया गया। सुरक्षाकर्मियों का रोज़मर्रा में सार्वजनिक वाहनों में सफर करना इस बात का सूचक है कि सरकार आम नागरिकों की सुरक्षा के प्रति गंभीर नहीं है। बासागुड़ा और बीजापुर के बीच चलने वाली हर बस में हथियार बंद सुरक्षाकर्मी होते हैं। 30 दिसम्बर 2014 की सुबह 7 बजे वाली बस में आधे से ज़्यादा सुरक्षाकर्मी थे। बाकी आधे लोगों में बच्चे, और छोटे–बड़े आदमी और औरतें, बिल्लीपारा गाँव से 29 दिसम्बर को उठाए गए दो लोगों के अलावा बाकी हथियारबंद पुलिस वाले थे।

कैंपों को लेकर भारी विरोध – जब गाँव वालों से पूछा गया कि क्या उन्हें 'अंदर वालों' यानी कि माओवादियों से डर लगता है तो उन्होंने कहा कि अंदर वाले उन्हें पीटते, या जान से मारते नहीं हैं, वे उनकी औरतों को उत्पीड़ित नहीं करते, उनके साथ बलात्कार नहीं करते और वे उनकी चीज़ें नहीं चुराते हैं। पर साथ ही गाँव वालों ने कहा कि ये सुरक्षाकर्मी 'अंदर वालों' से डरते हैं क्योंकि वे उनके सड़क निर्माण के काम का विरोध करते हैं और उस पर हमला करते हैं। बम फटने या पाए जाने और उसके बाद के दमन की बार–बार होने वाली घटनाएं भी गाँव वालों के लिए सबसे बड़ी मुसीबत नहीं हैं पर सबसे बड़ी मुसीबत हैं इन कैंपों का बने रहना। कुछ गाँव वालों ने यह भी कहा कि सड़क निर्माण और कैंपों की स्थापना ने बम विस्फोटों को बढ़ावा दिया है। इसमें कोई शक नहीं है कि कैंपों को हटाया जाना एक लोकप्रिय और सभी की साझा मांग है। हर दिन की प्रताड़ना का डर उन्हें बहुत अधिक परेशान करता है। पहले की तरह स्वतंत्रता से न घूम पाने, अपने परंपरागत औज़ार और हथियार काम की जगह पर न ले जा पाने, खेती के काम में गिरावट, पीटे जाने, यौन हिंसा, सुरक्षाकर्मियों द्वारा ज़बर्दस्ती घरों में घुसने, लूट और प्रचंड विनाश, भविष्य के प्रति असुरक्षा को लेकर गुस्सा साफ़ दिखाई देता है। जैसा कि पहले बताया गया, कुछ लोगों ने यह भी पूछा कि क्या उन्होंने गाँव वापस आकर ठीक किया या क्या उन्हें गाँव छोड़ देना चाहिए।

गाँव वाले कैंपों को अपनी मुसीबत मानते हैं। पहले मुसीबत सलवा जुडूम के रूप में आई थी अब वह क्षेत्र पर प्रभुत्व स्थापित करने की मिलिट्री की रणनीति के तहत सड़क निर्माण और रखवाली के रूप में आई है। कई गाँव वालों को यह भी लगता है कि क्या सरकार उन्हें बाहर खदेड़ना चाहती है? इस बार सलवा जुडूम जैसे नहीं, बल्कि रोज़मर्रा के उत्पीड़न और बीच–बीच में हत्याओं के माध्यम से। बीजापुर के कम्युनिस्ट पार्टी ऑफ़ इंडिया के सदस्य कमलेश झाड़ी ने बस्तर में से सभी मिलिटरी कैंपों को हटाए जाने की अपनी और अपनी पार्टी की मांग दोहराई। पूरी जाँच के दौरान सीआरपीएफ, छत्तीसगढ़ आर्मड फोर्सिस या कोबरा के लिए समर्थन का एक भी उदाहरण सामने नहीं आया। यहाँ से हो कर जाने पर, हथियारों से लैस सुरक्षाकर्मियों के अपने रखवाली करने वाले कुत्तों के साथ निहत्थे आदिवासियों पर पहरा देते हुए दिखाई

देने की एक अमिट छाप छूट जाती है।

स्पेशल पुलिस ऑफीसर (एसपीओज़) – ध्यान देने की बात है कि हालांकि एसपीओज़ से नफरत की जाती है परन्तु उनके लिए सहानुभूति भी है। उन एसपीओज़ को जो कि आत्मसमर्पण कर चुके माओवादी आदिवासी नौजवान हैं, आर्मी पहले कोया कमांडो कहती थी। सन् 2011 में सर्वोच्च न्यायालय का फैसला आया जिसमें एसपीओज़ को हटा लेने और उनसे हथियार वापस लिए जाने का आदेश दिया गया। इस फैसले के बावजूद ये आज भी काम कर रहे हैं और वह भी 'वैध' तरीके से – क्योंकि छत्तीसगढ़ सरकार ने उन्हें 'सहायक बलों' की तरह पुलिस बल में शामिल कर लिया है। कई गाँव वालों ने कहा कि एसपीओज़ भी आदिवासी हैं और असल में सलवा जुडूम ने उन्हें एक दूसरे के विराध में खड़ा कर दिया है। जैसा कि पहले बताया गया है गाँव वाले सलवा जुडूम को एक प्रलय की घटना के रूप में देखते हैं जिसने उनका सबसे अधिक विनाश किया हैं। एसपीओज़ असल में विनाश की इस प्रक्रिया का एक हिस्सा हैं जो कि गाँव वालों को प्रताड़ित करते हैं और जिन्हें सैनिकों और जवानों जैसे प्रतिरक्षा मिली हुई है। पर साथ ही गाँव वालों का यह भी कहना है कि एसपीओज़ को काफी कष्टदायक काम भी करने पड़ते हैं, सैनिक उनसे कुली का काम भी करवाते हैं। वे सैनिकों और पुलिस अफसरों के लिए संदेश पहुँचाने का काम भी करते हैं। और अर्धसैनिक बलों के जवान भी उन पर ऑर्डर चलाते हैं। ऐसा लगता है कि हालांकि एसपीओज़ कैंपों और ग्रामीणों के बीच सुरक्षा बलों की मदद में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं पर फिर भी उन्हें गैरबराबरी का सामना करना पड़ता है।

3 'बेलगाम सैन्यबल'

गाँव वाले बेहद नाराज़ हैं और वे बताना चाहते हैं कि ऐसा वे क्यों महसूस कर रहे हैं। पूरी जाँच के दौरान पीयूडीआर ने पाया कि लोग अपने आप, बिना बुलाए अपनी आपबीती बताने पहुँच रहे थे। समय और अन्य सीमाओं के चलते केवल तत्कालीन मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित किया गया। कुछ अन्य परेशान कर देने वाले मुद्दों जैसे यौन हिंसा, की ठीक से जाँच नहीं हो पाई क्योंकि इनको समझने के लिए अधिक समय की ज़रूरत थी। साथ ही हमने यह भी पाया कि लोग खुलकर बात नहीं रख पा रहे थे। उन्हें डर था कि अगर उन्होंने कुछ बताया तो पुलिस उनको परेशान करेगी। पहरा दे रहे सैनिकों और कैम्पों के सायों में उनका जीवन जैसे बेड़ियों में बंध गया है और इन दोनों ने उनके मन में डर को और भी गहरा कर दिया है।

छोटे तोंगपाल उन गाँवों में से है जहाँ गाँव वालों को 26 नवम्बर 2014 को पीटा गया और जहाँ से 26 युवकों को भी उठाया गया था। इनमें से 15 को गिरफ़्तार कर लिया गया था। मुक्का कवासिठे, छोटे तोंगपाल के पूर्व सरपंच को भी गिरफ़्तार किया गया था। उनका अपराध यह था कि वे एनडीटीवी के एक इंटरव्यू में उपस्थित थे जहाँ उन्होंने निर्दोष गाँव वालों के जबरन 'सरेंडर' के ढकोसले का खुलासा किया था, और यह भी बताया था कि कैसे गाँव वाले कोशिश कर रहे हैं कि बलों के खिलाफ मार–पीट की घटना के संबंध में प्राथमिकी (एफआईआर) दर्ज़ कराई जाए। प्राथमिकी दर्ज़ करने के संबंध में कोर्ट ने 18 दिसम्बर को पुलिस स्टेशन को निर्देश दिए थे कि वह अगली सुनवाई में अपनी रिपोर्ट जमा करे। मुक्का का इंटरव्यू 19 दिसम्बर को प्रसारित किया गया था (http://khabar.ndtv.com/video/show/news/bastar-tribals-forced-to-surrender-348926)। उनको अगले ही दिन दोपहर के 1 बजे के करीब कुकानार बाज़ार (हाट) से उठा लिया गया था। एनडीटीवी न्यूज़ चैनल ने उनकी गिरफ़्तारी की खबर भी दिखाई थी पर साथ ही इसकी ज़िम्मेदारी से बचते हुए यह भी कह दिया था कि उनकी गिरफ़्तारी का उस इंटरव्यू से कोई लेना देना नहीं था। (http://khabar.ndtv.com/news/india/sukma-tribesman-who-talked-to-ndtv-india-detained-715600)

जब छोटे तोंगपाल के उन लोगों ने जिन्हें 26 नवम्बर को पीटा गया था, घटना के संबंध में अगले दिन प्राथमिकी दर्ज़ करवाने की कोशिश की तो पुलिस ने ऐसा करने से मना कर दिया। पुलिस अधीक्षक ने उन्हें आश्वासन दिया कि वह 'जाँच' के बाद प्राथमिकी दर्ज़ करेगा, पर आज तक ऐसा नहीं हुआ है। चौंकाने वाली बात यह है कि सुकमा और जगदलपुर के जिला अस्पतालों से प्राप्त मेडिको लीगल सर्टिफिकेट (एमएलसी) से पता चलता है कि कुछ गाँव वालों की हड्डियाँ भी

टूटी थीं, जिससे यह एक संज्ञेय अपराध बन जाता है, जिसमें पुलिस को तत्काल प्राथमिकी दर्ज़ करना अनिवार्य है। जब 18 दिसम्बर 2014 को सुकमा के चीफ़ जुडिशिअल मजिस्ट्रेट (सीजेएम) को सीआरपीसी की धारा 156 (3) के तहत अर्ज़ी दी गई तो उन्होंने भी पुलिस को प्राथमिकी दर्ज़ करने का निर्देश देने की जगह सिर्फ इतना ही कहा कि वे अपनी जाँच जल्दी करें।(http://www.thehindu.com/news/national/other-states/policewent-on-the-rampagein-chhattisgarh-villages-say-residents/article6670955-ece).

इस तरह से प्राथमिकी दर्ज़ कराना भी एक असंभव सी बात हो गई है। ऐसी परिस्थिति में सिर्फ कोर्ट ही पुलिस को ऐसा करने के निर्देश दे सकते हैं पर कोर्ट ऐसा करने में बहुत देर करते हैं। हालांकि कलेक्टर ने लोगों से अपनी शिकायत लिखित में देने को कहा है पर गाँव वालों को विश्वास नहीं है कि इससे कुछ होगा। महत्वपूर्ण है कि सारकेगुड़ा हत्याकांड के बाद राज्य सरकार द्वारा नियुक्त जाँच आयोग ने आज तक अपना काम पूरा नहीं किया है और अगर वह यह कर भी ले तो भी यह जानने का कोई तरीका नहीं होगा कि हत्याकांड के लिए ज़िम्मेदार अपराधियों के खिलाफ कार्यवाही की मांग का क्या होगा।

गिरफ्तारियाँ और मुकदमे – ऐसा बिलकुल भी नहीं लगता कि राज्य अपने सैनिकों द्वारा इन इलाकों में हर रोज़ किये जा रहे अपराधों को रोकने के लिए गंभीर है। इसके विपरीत गाँव वालों की लगातार गिरफ्तारियाँ हो रही हैं और उनके खिलाफ मुकदमे दर्ज़ किए जा रहे हैं। जिससे गाँव वालों के मन में डर पनप रहा है। मिनिस्ट्री ऑफ़ ट्राइबल अफेयर्स द्वारा वर्ज़ीनिअस खाखा के नेतृत्व में गठित उच्च स्तरीय समिति की रिपोर्ट में भी आदिवासियों के मन में पनप रहे इस डर का वर्णन है। मई 2014 में केंद्रीय सरकार के समक्ष रखी गई इस रिपोर्ट के पृष्ठ 356 पर लिखा है –

> *'बड़ी संख्या में आदिवासी कई कई वर्षों से जेलों में इसीलिए पड़े हैं क्योंकि उन पर चल रहे मुकदमे अभी तक लंबित हैं..... पहली प्राथमिकी दर्ज़ होने के बाद उनके खिलाफ हिंसा के अन्य मामलों में और प्राथमिकियाँ दर्ज़ कर दी जाती हैं। नक्सल अपराधों में अभियुक्त व्यक्तियों को ज़मानत मिलना बहुत मुश्किल होता है, जिसके कारण वे लम्बे समय तक जेलों में सड़ते रहते हैं। मुकदमे इसीलिए खिंचते चले जाते हैं क्योंकि सरकारी गवाह अनुपस्थित रहते हैं। ऐसा इसलिए हो सकता है क्योंकि पैरामिलिटरी फ़ोर्स का सदस्य, जो कि अभियोजन की तरफ से गवाह होता है, अपनी इकाई के साथ राज्य छोड़कर वापस चला गया होता है ..... समिति कुछ अपराध–संबंधी वकीलों से भी मिली.....(जिन्होंने) अनुमान लगाया है कि लगभग 95 प्रतिशत मुकदमे आधारहीन हैं.....एक आरटीआई के जवाब में कोर्ट रजिस्टरों से पता चला कि 2005 से 2012 के बीच निपटाए गए सभी मामलों में से औसतन 95.7 प्रतिशत मामलों में अभियुक्त दोषमुक्त साबित होकर बरी हो जाते हैं।'*

ज़ाहिर है कि आदिवासियों के मन में गिरफ़्तारी का वास्तविक डर है। जेल में वर्षों तक बंद रहने के अलावा, कानूनी कार्यवाही के लिए ताबड़तोड़ खर्च (खबरों के अनुसार 20,000 रुपए प्रति मुकदमा), दांतेवाड़ा कोर्ट के चक्कर और मुकदमे के शुरू होने और खत्म होने के बीच का लम्बा इंतज़ार – यह सब परिवारों को पूरी तरह से तोड़ डालते हैं और उनके बेहद सीमित संसाधनों और शक्ति को खत्म कर देते है। यह डर इसलिए भी और बढ़ जाता है क्योंकि पैरामिलिटरी के खिलाफ उनके किए गए अपराधों के संबंध में मामला दर्ज़ करना लगभग नामुमकिन है। गाँव वालों के अनुसार, पुलिस और फौज 'वारंट' शब्द के प्रयोग से उनको धमकाकर चुप करा देते हैं।

स्थाई वारंट – ऐसी परिस्थितियों में स्थाई वारंट का प्रयोग आदिवासियों के लिए एक बड़ी गंभीर समस्या बन गया है। आखिर बस्तर में ऐसे कितने परमानेंट वारंट हैं? हमें पता चला कि 2000 से 2014 के बीच कम से कम 20,000 वारंट जारी किये गए थे। इनमें से कितने वारंट कोर्ट द्वारा जारी किये गए थे ? पता नहीं और कितने लोगों को चार्जशीट/चालान में नामित/नामज़द किया गया है? गाँव वालों ने बताया की पुलिस द्वारा प्रति वारंट 15 – 35 आदिवासियों को नामजद किया जाता था। वारंट में इन लोगों के बारे में कोई विस्तृत जानकारी नहीं होती थी जैसे पिता का नाम या गाँव का नाम वगैरह। कई बार तो नामों के बिना ही वारंट जारी किये गए थे। इन सभी को 'फरार' घोषित कर दिया गया है। साधारण शब्दों में इसका मतलब यह है की बस्तर में पुलिस रिकॉर्ड के अनुसार लगभग 3 से 7 लाख लोग फरार हैं।

थोड़ा और करीब से देखने पर पता चलता है की ये मसला कितना बड़ा है। उदाहरण के लिए केवल बीजापुर जिले में ही 1000 ऐसे वारंट हैं। इसका मतलब बीजापुर में ही तथाकथित 'फरार' लोगों की संख्या 15,000 से 35,000 के बीच है! बीजापुर की कुल जनसँख्या 2,55,230 है। अगर एक व्यक्ति के खिलाफ एक से ज़्यादा वारंट भी हैं (नामित या बिना नाम के)। जितनी बड़ी तादाद में लोगों को 'फरार' घोषित किया गया है उसे देखने में लगता है जैसे कि लगभग पूरी जनसंख्या को ही अभियुक्त बना दिया गया है। अलग ढंग से कहें तो इसका मतलब यह है की सरकार ने अपने ही लाखों लोगों के खिलाफ एक जंग छेड़ दी है और घिनौना सच यह है कि माओवादियों के खिलाफ चल रही जंग का बदला आदिवासियों से लिया जा रहा है।

दण्डमुक्ति – इस परिस्थिति में एक गंभीर प्रश्न उठता है कि क्या सरकारी सुरक्षा बलों को अपने उच्च अधिकारियों से मनमानी करने की आज़ादी मिली हुई है या फिर क्या वे राजनैतिक आकाओं के निर्देश पर ऐसा कर रहे हैं? प्राथमिकी दर्ज़ करने से मना कर देना सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ललिता कुमारी बनाम यूपी सरकार 2013 के दिशा–निर्देश का सीधा उल्लंघन है, जिसमें न्यायालय ने कहा है कि सीआरपीसी की धारा 154 के अंतर्गत संज्ञेय अपराधों में प्राथमिकी दर्ज़ करना अनिवार्य है। पर यहाँ बस्तर में वरिष्ठ अधिकारियों की तरफ से इन दिशा निर्देशों पर अमल कराने की कोई कोशिश नज़र नहीं आती। इससे स्पष्ट तौर पर सैनिकों को यह सन्देश जाता है कि वे कानून का उल्लंघन कर सकते हैं। केन्द्रीय गृह मंत्री राजनाथ सिंह ने 3 सितम्बर 2014 को जयपुर में पुलिस प्रशिक्षण संस्थान की 33वीं संगोष्ठी में जो कहा वह इस बात को प्रमाणित करता है – 'जब मैं उत्तर प्रदेश का मुख्यमंत्री था तो मैंने पुलिस बलों को पूरा आश्वासन दिया था कि वे माओवादियों का सामना करते समय मानव अधिकार आयोग के चक्करों से पूरी तरह आज़ाद हैं।' इसी संगोष्ठी में सिंह ने यह भी बताया कि कैसे उन्होंने यूपी में अपने सिपाहियों को आश्वासन दिया था कि वे मानव अधिकार उल्लंघनों और आयोग की जाँच के बारे में चिंता न करें। उन्होंने कहा कि 'मैंने उन्हें कहा था कि उन्हें आयोग की चिंता करने के ज़रूरत नहीं है, मैं सब देख लूँगा।'

रोज़ाना होने वाला उत्पीड़न – गाँव वालों ने बताया कि सैनिक उन्हें माओवादी या उनके समर्थक समझते हैं। अगर कोई घटना हो जाती है तो सैनिकों का गुस्सा गाँव वालों पर निकलता है। आम तौर पर यह दलील दी जाती है कि माओवादियों की वजह से गाँव वालों की ज़िंदगियाँ खतरे में पड़ गई हैं या फिर यह कि सुरक्षा बलों और माओवादियों दोनों को ही अपने को नियंत्रण में रखना चाहिए। ये दलीलें गाँव वालों को प्रभावित नहीं करती। वे बार–बार घुमाकर यही बताते हैं कि कैसे कैम्पों की वजह से उनकी सुरक्षा और सलामती को खतरा है और यह की ये सब चीज़ें सलवा जुडूम के आने से पहले नहीं हुआ करती थीं। उससे पहले यहाँ कोई कैंप नहीं हुआ करते थे। जब पूछा गया की क्या इसका मतलब यह है की सलवा जुडूम के आने के बाद से ही ये कैंप आये हैं और यही परेशानी का मूल कारण है, तो उन्हें सहमती जताई। हालांकि दोबारा कोई हत्याकांड नहीं हुआ है, हाल ही में हुई घटना के कारण गाँव वालों के मन पर यह हावी रहता है कि उनका क्या हश्र हो सकता है। जहाँ 2012 में सारकेगुड़ा हत्याकांड ने उन्हें हिलाकर रख दिया था वहीं 17 मई 2013 को बीजापुर जिले के इडसमेता में हुई हत्याएं जिसमें, 3 बच्चों समेत 8 गांव वाले मारे गए थे, उनको याद दिलाती है कि सुरक्षा बल किस हद तक जा सकते हैं। आदिवासियों के लिए हत्याएं, गिरफ्तारियाँ और उत्पीड़न और धमकियाँ देना अब रोज़मर्रा की बात हो गई है। कुछ सौ या हज़ार रुपयों की चोरी कुछ एक बाहर वालों को साधारण सी बात लगेगी, पर जब इसे इस सन्दर्भ में देखा जाए कि मिर्ची के खेतों में काम करके और छोटे वनोपज की बिक्री करके आदिवासी सालाना सिर्फ 15 से 20,000 रुपए ही कमा पाते हैं, तो इस राशि को खोने से उनकी ज़िंदगियों में होने वाले असर की गंभीरता को समझा जा सकता है। इन आदिवासियों को कभी भी उठाया जा सकता है। गिरफ़्तारी के डर के साथ 'बेगार' की ज़िल्लत भी इन्हें विचलित करती है। बात सिर्फ यहीं तक सीमित नहीं है। चिंता इस बात की भी है कि कैसे माओवाद को खत्म करने की आड़ में निंदनीय सामन्ती प्रवृत्ति को सामन्य जीवन का हिस्सा बनाया जा रहा है। इसलिए इन कैम्पों ने गाँव वालों का आत्मविश्वास हिला कर रख दिया है और उनकी असुरक्षा को भी बढ़ा दिया है। रोज़–रोज़ के उत्पीड़न, ज़िल्लत, जेलों में सड़ने और कोर्ट कचहरी के खर्च आदि इस मांग को और भी मज़बूत करते हैं कि कैम्पों को हटाया जाए।

बॉक्स 3 : स्थाई वारंट

'परमानेंट (स्थाई) वारंट' – साधारण भाषा में, परमानेंट वारंट बीजापुर की स्थानीय पुलिस के हाथ में एक ऐसे यंत्र के रूप में देखा गया, जिसकी मदद से वह किसी भी व्यक्ति को, कभी भी झूठा मुकदमा लगाकर गिरफ्तार कर सकती है। निम्नलिखित बिन्दु परमानेंट वारंट के प्रयोग के बारे में विस्तृत जानकारी देते हैं –

1. **प्राथमिकियाँ** ज़्यादातर 'अज्ञात नक्सलियों'के खिलाफ होती हैं – या फिर कुछ नामों के साथ कुछ 50 से 200 अज्ञात व्यक्तियों के खिलाफ। कई बार प्राथमिकियों में ग्रामीणों के सामान्य नाम होते हैं जैसे हिदमा, अयातु, मंगलू आदि जिनके साथ कोई अन्य पहचान सूचक (जैसे पिता या गाँव का नाम) नहीं होता।

2. आम तौर पर जब पुलिस एक शिकायत की **जाँच** करती है तो 3 से 5 लोगों को गिरफ़्तार करती है लेकिन कोर्ट में जमा की गयी चार्ज शीट में वे 15 से 35 लोगों को अभियुक्त के तौर पर नामजद करती है – बाकी बचे हुए लोगों को गिरफ़्तार नहीं करती पर 'फरार' लोगों की सूची में डाल देती है। परिणामस्वरूप इस क्षेत्र में तथाकथित 'फरार' लोगों की संख्या विशाल है। अनुमान है की कुछ लक्षित गाँवों में 15 से 45 वर्ष के हर पुरुष को (और कुछ महत्वपूर्ण महिलाओं को) किसी न किसी चार्ज शीट में 'फरार' बताया गया है। कई लोगों को एक से ज़्यादा चार्जशीटों में नामित किया गया है।

3. ये लोग असल में फरार नहीं हैं। पर उन्हें गिरफ़्तार ही नहीं किया गया है। इनमें से अधिकांश लोगों को पता ही नहीं है कि उन्हें किसी चार्ज शीट में 'फरार' लोगों की सूची में नामित किया गया है। मगर कोर्ट में चार्ज शीट जमा होने के बाद, मुकदमा शुरू करते समय, **कोर्ट सभी फरार लोगों के खिलाफ एक 'परमानेंट (स्थाई) वारंट' जारी कर देता है। ये वारंट पुलिस के पास रहते हैं जो उन्हें अभियुक्तों को जल्द से जल्द गिरफ़्तार करने के लिए अधिकृत करते हैं। इन स्थाई वारंटों का प्रयोग पुलिस मनमाने तरीके से कर सकती है जिसके कारण ये हमेशा एक तलवार की तरह गाँव वालों के सिरों पर लटकते रहते हैं।** उदाहरण के लिए जब सोनी सोरी को ऐसार मामले में गिरफ़्तार किया गया था तब उनके खिलाफ 8 लंबित वारंट थे। हालांकि जिस समय से संबंधित ये वारंट हैं उस दौरान वे लगातार एक सरकारी आश्रम स्कूल में वार्डन थीं। गिरफ़्तारी के समय उनके पति अनिल फुटाने के खिलाफ 4 लंबित वारंट और भतीजे लिंगाराम कोडोपि के खिलाफ 2 लंबित वारंट थे। सारकेगुड़ा हत्याकांड में जब सीआरपीएफ ने नाबालिग व्यक्तियों समेत 17 लोगों को मार गिराया, तो उन्होंने झट से इन मरे हुए लोगों को नक्सलवादी घोषित कर दिया। इस बात की पुष्टि करने के लिए उन्होंने मृतकों के खिलाफ लंबित परमानेंट वारंट पेश कर दिए जो कई वर्ष पुराने थे।

4. तकनीकि रूप से, हर व्यक्ति जिसके खिलाफ एक परमानेंट वारंट है, उसके लिए पटवारी द्वारा एक पंचनामा बनाया जाना चाहिए। पंचनामे में यह लिखा जाना चाहिए की वह व्यक्ति 'फरार' है और उसकी चल और अचल संपत्ति को ज़ब्त कर लिया गया है/जाएगा। इसके विपरीत कोर्ट के समक्ष प्रस्तुत की गई चार्ज शीट एक मज़ाक ही लगती है। पुलिस के कथित गवाहों के बयान इस प्रकार होते हैं – 'पुलिस को देखने पर माओवादी एक दूसरे का नाम पुकारते हुए भागे – 'भाग नागेश'/'भाग अयातु' आदि। कई मामलों में तथाकथित नागेश या अयातु के खिलाफ चार्ज शीट में यही एकमात्र साक्ष्य भी होता है, जिसके आधार पर गिरफ़्तारी होती है या परमानेंट वारंट जारी किया जाता है।

5. एस. आर. कल्लूरी के बस्तर के आई जी के पद पर लौटने से यह संगठित कोशिश की जा रही है कि उन लोगों को गिरफ़्तार किया जाए जिनके खिलाफ लंबित वारंट हैं। इसी प्रकार लोगों से सरेंडर करवाया जा रहा है – जो लोग शांतिपूर्वक अपने गाँव में रह रहे हैं और जिनके बारे में पुलिस अच्छी तरह से जानती है, उनसे कहा जा रहा है कि पुलिस के पास उनके खिलाफ वारंट है और या तो वे सरेंडर कर दें या गिरफ़्तार होकर जेल में सड़ें। अब जबकि 'सरेंडर' पर सवाल उठने लगे हैं, तो पुलिस केवल उन्हीं को गिरफ़्तार कर रही है जिनके खिलाफ परमानेंट वारंट हैं। ये परमानेंट वारंट जबरन वसूली के लिए भी इस्तेमाल किये जा रहे हैं।

6. 29 दिसम्बर 2014 को बीजापुर पुलिस ने एक बड़ा 'सफाया' ऑपरेशन किया और एक दिन में 32 उन लोगों को गिरफ़्तार कर लिया, जिनके खिलाफ कई वर्ष पुराने लंबित वारंट थे। 31 दिसंबर को नई दुनिया और जागरण में यह खबर छपी थी। उसी दिन हितावद में एक अलग खबर छपी, जिसमें बताया गया था कि 5 माओवादियों ने, जिनमें 2 महिलाएं, जिनके सर पर 2 लाख का इनाम भी था, सरेंडर कर दिया था। उन दोनों महिलाओं के नाम एक जैसे थे। एक थी मिताकी मोदियाम गाँव की रहने वाली गट्टापल्ली कुतारु और दूसरी सोमाली गाँव की रहने वाली गट्टापल्ली कुतारु। बताया गया कि उनके साथ सन्नू कुडियाम नाम का एक बच्चा भी था जो कथित तौर पर बाल संघम का एक सदस्य था। इन सभी को राज्य सरकार द्वारा 5,000 रुपए का 'प्रोत्साहन' इनाम भी दिया गया था।

निष्कर्ष

उग्रवाद से निपटने का हमेशा से ही यही मतलब होता है कि सुरक्षा बलों द्वारा उन्हीं लोगों को निशाना बनाया जाता है जिनकी 'सुरक्षा' के लिए उन्हें लगाया जाता है। दूसरे शब्दों में क्योंकि ऐसा माना जाता है कि आदिवासी माओवादियों से मिले हुए हैं, हर बार जब किसी बम धमाके से मौतें हो जाती हैं तो सुरक्षा बल गाँव वालों पर हमला कर देते हैं। विडंबना यह है कि सुरक्षा बल असल में वहाँ आदिवासियों की तथाकथित सुरक्षा के लिए तैनात किए गए हैं! साफ़ है कि उद्देश्य आदिवासियों की राज्य का विरोध करने की इच्छाशक्ति को खत्म करना और उन्हें आधिकारिक प्रयासों को स्वीकार करने के लिए तैयार करना है। इस स्थिति में जबकि आधिकारिक रूप से ऐसा मानने से इंकार किया जा रहा है कि बस्तर युद्ध क्षेत्र है, वहाँ कानून का शासन होने की संभावना ही नहीं रहती। इस तरह से एक 'काफकाई' स्थिति बन जाती है जिसमें कानून की पूरी ताकत आदिवासियों को निशाना बनाने में लगी है और कार्यकारिणी सैनिकों और अफसरों पर उनके द्वारा किए जा रहे युद्ध अपराधों के लिए अभियोजन चलाने की इजाज़त न देकर उन्हें बचाने में लगी है। क्योंकि यह माना ही नहीं जाता कि यह युद्ध की स्थिति है, मानक नियमों का पालन ही नहीं किया जाता। यहाँ ध्यान देने की ज़रूरत है कि हालांकि सभी सुरक्षा बल हथियारबंद होते हैं, आदिवासियों को अनुसूचित क्षेत्र में अपने परंपरागत हथियार जैसे धनुष बाण तक ले कर चलने नहीं दिया जाता। इस तरह की सैन्य तानाशाही जिसमें एक संवैधानिक अधिकार को आपराधिक कार्यवाही बना दिया जाता है सिर्फ युद्ध क्षेत्र में ही संभव है।

यह साबित हो गया है कि युद्ध क्षेत्र में सैन्य बल ही सारे फैसले लेते हैं। दूसरी यूपीए सरकार के योजना आयोग ने इंटीग्रेटिड एक्शन प्लान (आईएपी) की परिकल्पना की जिसके तहत उन जिलों में जहाँ माओवादी/नक्सलवादी सक्रिय हैं, ग्राम सभाओं को साथ में लेकर 'विकास' के काम शुरू किए जाने की कोशिश शुरू हुई। अभी तक आईएपी कलैक्टर, पुलिस सुप्रिंटेंडेंट और जिला वन अधिकारी की तिगड़ी द्वारा गृह मंत्रालय के दबाव में लागू किया जाता रहा है और इसके लिए यह तर्क दिया जाता रहा है कि ज़्यादातर जगहों में स्थानीय निकाय या तो हैं ही नहीं या फिर बेहद कमज़ोर हैं। अब मौजूदा एनडीए सरकार के राज में सैंट्रल पैरामिलिटरी फोर्स को भी आईएपी के खर्चे के बारे में अपनी राय देने का हक मिलेगा। और पहले जबकि पैसे का वितरण जिले के स्तर पर होता था अब यह वितरण ब्लॉक के स्तर पर होगा। इससे पैसे के वितरण में मिलिटरी की भूमिका बढ़ेगी। पाँचवीं अनुसूची, पंचायत उपबंध (अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार) अधिनियम 1996 (पेसा) और वन अधिकार अधिनियम 2006 (एफआरए) के तहत ग्राम सभाओं की बृहद आधिकारिक भूमिका की परिकल्पना थी। पर आज इसे पूरी तरह से नकार कर मिलिटरी को पैसों के आवंटन के अधिकार दे दिए गए हैं।

देश के कानून और न्यायपालिका भी अपने नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करने में पूरी तरह से असफल रहे हैं। उल्टा कार्यकारिणी के युद्ध चलाने के अधिकार को संवैधानिक बना दिया गया है और युद्ध अपराधों में लगे सशस्त्र सैन्य बलों को किसी भी तरह की कार्यवाही से बचाने की कानूनी प्रतिरक्षा को मज़बूत बना दिया गया है। सर्वोच्च न्यायालय ने अपनी चिंता ज़ाहिर करने के लिए पीड़ितों को मुआवज़ा दिलाने या मुआवज़े की रकम बढ़ाने से ज़्यादा कभी कुछ नहीं किया है। ट्राइबल अफेअर मिनिस्ट्री की उच्च स्तरीय समिति ने इस ओर इशारा किया कि तथाकथित 'नक्सलवादी अपराधों' के आरोपियों को न्यायालय आसानी से ज़मानत नहीं देते, जबकि असल में 'नक्सलवादी अपराध' कोई संज्ञेय अपराध नहीं हैं, इस परिभाषा का इस्तेमाल केवल माओवादियों के समर्थक या हमदर्द होने के नाम पर लोगों को आईपीसी, आर्म्स ऐक्ट या ऐक्सप्लोसिव सब्सटेंस ऐक्ट के गंभीर प्रावधानों के तहत पकड़ने के लिए किया जाता है। इस रिपोर्ट के अनुसार बीजापुर में रहने वाले सभी आदिवासी कानून की नज़र में संदिग्ध हैं और कइयों को सिर्फ इसलिए पकड़ कर जेलों में डाल दिया जाता है। मई 2012 में सुकुमा के कलैक्टर का माओवादियों ने अपहरण कर लिया था, उसके बाद राज्य की सरकार ने निर्मला बुच के नेतृत्व में एक समिति का गठन किया जिसका काम छत्तीसगढ़ में विचाराधीन आदिवासी कैदियों के अभियोजन में देरी की जाँच करना था। बुच समिति ने अपने इस सुझाव से कि गरीबी और बीमारी के आधार पर ज़मानत दे दी

जानी चाहिए, कुछ राहत प्रदान की। समिति अभी भी बीच–बीच में मिलती रहती है और विचाराधीन कैदियों के नामों की सूची जारी करती रहती है, जिनके लिए उनके अनुसार अभियोजन पक्ष को ज़मानत का विरोध नहीं करना चाहिए। परन्तु समिति ने आज तक स्थाई वारंट के मुद्दे की पड़ताल करने की कोशिश नहीं की है और न ही मामलों की न्यायिक समीक्षा की मांग उठाई है।

यह एक बहुत ही चिंता का विषय है कि आदिवासियों के रोज़मर्रा के उत्पीड़न और बीच–बीच में होने वाले नरसंहार की कोई खबरें बाहर ही नहीं आतीं। सैन्य बलों द्वारा नियमित गश्त लगाना, सड़कों और बसों में सुरक्षाकर्मियों की मौजूदगी, काम की जगहों, घरों, खेतों पर या सफर करते समय लोगों को डराना धमकाना आदि से साफ़ दिखता है कि सलवा जुडूम की प्रत्यक्ष हिंसा की जगह किस तरह से लगातार, रोज़मर्रा की छिपी हुई हिंसा ने ले ली है। 'बीच–बीच में और रोज़ाना' की हिंसा और अधिकारों के हनन की दोहरी नीति से आदिवासी खुल कर बोलने और जानकारी बांटने से पूरी तरह डरने लगे हैं। कई बार गाँव वालों ने कहा कि 'वह' व्यक्ति उनके बारे में हमसे बात करेगा। वे केवल तभी बोलते हैं जब उनसे सवाल पूछे जाते हैं या फिर उन्हें कुछ खास कहना होता है। दूसरी ओर उन्हें अपने क्षेत्र के बारे में कोई भी आधिकारिक जानकारी नहीं दी जाती। उदाहरण के लिए लागों को डर है कि पोलावरम बांध से 300 गाँव डूब जाएंगे, पर सैन्ट्रल एम्पावरमेंट कमिटी 2006 के अनुसार बांध से चार बस्तियों के 2335 परिवारों के 11,766 लोग प्रभावित होंगे। सच क्या है? क्या डर बेवजह है? अगर ऐसा है तो लोगों के डर और असुरक्षा को शांत करने के लिए उन्हें कोई भी जानकारी क्यों नहीं दी गई है?

पूरी जाँच के दौरान बार–बार यह सामने आया कि सुरक्षा बलों को लोग शिकारी मानते हैं। ग्रेहॉन्ड और कोबरा जैसे उनके नाम अपने आप में यही संदेश देते भी हैं। यह सच में चौंकाने वाला है कि सीआरपीएफ जैसा सामान्य नाम भी यहाँ तुच्छ बन गया है। क्या ये सुरक्षा बल असल में उस काम को अंजाम दे रहे हैं जिसके लिए इन्हें तैनात किया गया है? क्या होगा अगर इस क्षेत्र में खनन और पर्यावरण के ह्रास के काम को और तेज़ करने के लिए लोगों को चुप करने के प्रयास के खिलाफ लोग खड़े हो जाएं? क्या सैनिकों और अफसरों को इस विवाद के बारे में कुछ पता भी है? क्या उनकी अपनी भी कुछ राय है? इन सवालों के कोई मायने नहीं हैं। झारखंड के सारंडा इलाके में यही हुआ, जहाँ से 2011 में माओवादी बाहर हो गए और 19 कैंपों के माध्यम से सीआरपीएफ अंदर पहुँच गई और खनन का काम चल निकला। छत्तीसगढ़ के राओघाट क्षेत्र में यही प्रक्रिया जारी है, जबकि वहाँ इसका विराध हो रहा है और इसी तरह से हमारी जाँच के क्षेत्र बैलाडिला खनन क्षेत्र के चारों तरफ भी यही स्थिति है। इस उद्यम में कुछ भी नेक नहीं है। बल्कि जिस तरह से भारतीय फौज किसी क्षेत्र को 'साफ़' कर देती है ताकि 'विकास' के एक विवादित मॉडल को ज़बर्दस्ती लोगों के ऊपर थोपा जा सके, उसे केवल नीचता ही कहा जा सकता है।

तीन रातों और चार दिनों में नौ गाँवों के दौरे से क्षेत्र की सूक्ष्म और बृहद वास्तविकताओं को पकड़ पाना संभव नहीं है। किन्तु, अगर हम इस दृष्टिकोण से देखने का प्रयास करें की इस क्षेत्र में संवैधानिक अनुशासन से कार्यविधियाँ चलती ही नहीं हैं, तो हमें इन नौ गाँवों से प्राप्त जानकारी पर्याप्त रूप से प्रतिनिधक ही लगेगी। युद्ध सभी धारणाओं को पैना बना देता है। क्षेत्र में जो स्थिति है उसके अलावा कुछ हो ही नहीं सकती क्योंकि युद्ध में केवल 'मारो या मरो' का नियम काम करता है। मौत की संभावना हर समय मंडराती रहती है। जब तक कि दो वर्दी वाले बल गुरिल्ला युद्ध चला रहे हैं दोनों को ही, अगर वे अपने महान लक्ष्यों के प्रति ईमानदार हैं, विशिष्ट मानकों का पालन करना चाहिए। दोनों पक्षों के लिए ही आम नागरिकों की ज़िंदगियों को खतरे में डालना वर्जित है। मौजूदा संदर्भ में हालांकि दोनों ही पक्षों ने गलतियाँ की हैं, सभी विवरण यही बताते हैं कि माओवादियों ने बहुत कम नुकसान पहुँचाया है और उन्होंने आम नागरिकों के प्रति अधिक ज़िम्मेदारी से काम किया है। सबसे बड़ी बात यह है कि उन्होंने भी युद्ध अपराध किए हैं पर उनसे आम लोगों को डर नहीं हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि वे आदिवासी समाज का ही हिस्सा हैं। यही बात उन्हें सरकारी सैन्य बलों से अलग कर देती है।

विरोधाभास यह है कि सरकार 'विकास' शुरू करने से पहले युद्ध चलाए रखने और नक्सलवाद को खत्म करने के पक्ष में है। इसलिए निजी कॉरपोरेट कंपनियों ने अपनी परियोजनाओं को तब तक के लिए

ठंडे बस्ते में डाला हुआ है जब तक कि जंगलों में से माओवादियों का सफाया न हो जाए। ऐसा इस डर के कारण है कि जैसे ही ये परियोजनाएं शुरू होंगी आदिवासियों का विरोध शुरू हो जाएगा। परन्तु सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम इस इलाके में अपना काम फैला रहे हैं। बैलाडिला में दो नई खानों में उत्पादन शुरू होने वाला है और एनएमडीसी–सीएमडीसी नागरनार में अपना एकीकृत स्टील प्लांट शुरू करने वाले हैं। सरकार जिस विकृत 'विकास' को थोपने में लगी है वह असल में जंगल की ज़मीन को कॉरपोरेट कंपनियों द्वारा दोहन के लिए खोलने की नीति के अलावा कुछ नहीं है। बस्तियों में आदिवासियों की जनसंख्या के घनत्व के कम हो जाने से कॉरपोरट्स के लिए समतल ज़मीन पर कब्ज़ा जमाना आसान हो जाता है। इसी उद्देश्य से स्थानीय अर्थव्यवस्था, खासकर कृषि को मन्द कर दिया गया है । इसे गहन मिलिटरी कार्यवाहियों के साथ में होने वाली क्षति (कोलैट्रल डैमेज) या स्वीकार्य परिणाम के रूप में देखा जाता है। वरिष्ठ पुलिस अफसरों, कमांडरों और सरकारी अधिकारियों के आम नागरिकों को माओवादियों से बचाने के पाखंडी दावे इस भयावह यथार्थ को छिपा लेते हैं।

माओवादी खेती में विघ्न नहीं डाल रहे, असल में सरकारी सैन्य बल ऐसा कर रहे हैं। सरकार को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि इस तरह का व्यवहार आदिवासियों की रक्षा करने से संबंधित हर कानून और संवैधानिक प्रावधान का उल्लंघन है। बच्चों को खाना और आश्रय घरों में भी मिल जाता है। सरकारी स्कूलों में शिक्षा की भी व्यवस्था थी। इस व्यवस्था को और मज़बूत करने की जगह स्कूलों को जानबूझ कर बर्बाद कर दिया गया है और बच्चों को आश्रम वाले स्कूलों में पढ़ने के लिए मजबूर कर दिया गया है। इस तरह से बच्चों को अपनी संस्कृति से जुड़े 'प्राकृतिक' परिवेश और अपने घरों की सुरक्षा से दूर कर दिया गया है। उन्हें बंद जगहों में रह कर नियंत्रित ज़िंदगियाँ जीने के लिए मजबूर कर दिया गया है। उनके भौतिक परिवेश को न रहने लायक बना कर उन्हें 'मुख्यधारा' में शामिल करना क्या एक किस्म की मत शिक्षा का ही संकेत नहीं है? यह तथ्य कि यह 'स्थाई विकास' के आश्वासन और वादे का मज़ाक है, सरकार को बिल्कुल भी परेशान नहीं करता।

यह कोई राज़ की बात नहीं है कि ऑपरेशन ग्रीन हंट का एक बुनियादी मकसद खनन में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश (फॉरेन डाइरेक्ट इन्वेस्टमेंट या एफडीआई) को आकर्षित और सुनिश्चित करने की नीति है। इस ऑपरेशन और माओवादियों के खिलाफ जंग से लोगों को होने वाली परेशानियों के अलावा, लौह अयस्क खनन के कारण पर्यावरण के प्रदूषण का खतरा बढ़ रहा है। जैसा कि पहले बताया गया है एनएमडीसी और सीएमडीसी बैलाडिला पहाड़ियों में दो खानें शुरू कर रहे हैं। मिलिटरी का उद्देश्य इनके निवेश की रक्षा करना है। इससे किरान्दुल और बचेली में एनएमडीसी की दो बड़ी ओपन कास्ट खानों से पर्यावरण को होने वाले नुक्सान, जिसमें शंखिनी और दंखिनी नदियों का प्रदूषण शामिल है और बढ़ जाएगा। ज़मीन और जंगल के मुद्दों पर, जो कि आदिवासी जीवन की स्व–अर्थव्यवस्था का अहम हिस्सा है और जो उनकी पहचान को पोसता है, आज हमला हो रहा है। उनका भविष्य अपनी ज़मीन से बेदखल कर दिया जाना या सिमटते जंगलों और बर्बाद होते पर्यावरण के कारण अपनी ज़मीन से हटने को मजबूर होना ही है। आदिवासियों को अपने भविष्य के बारे में कुछ तय कर पाना तो दूर, अपने हित में अपना मत रखने तक से सक्रिय रूप से वंचित किया जा रहा है जबकि इस 'विकास' के परिणाम उन्हें ही भुगतने पड़ेंगे।

इन 9 गाँवों के अलावा बाकी बस्तर की स्थिति भी खास फर्क नहीं है। कुछ अंतर ज़रूर हैं परन्तु समानताएं ज़्यादा हैं। कानूनी लड़ाई वारंट और फरार होने की है, जो कि उतनी ही हिंसक है जितनी कि लाठी और गोली की होती है और जैसा कि उनकी संख्या बताती है शायद ज़्यादा प्राणघातक है। 3 से 7 लाख बिना नाम के लोगों को 'फरार' बताना इस बात का सूचक है कि राज्य पूरी तरह से निरंकुश हो गया है। क्या ऐसा नहीं है? केन्द्र सरकार ऐसा मान सकती है कि उसके सैन्य बल 3 सालों में 'नक्सलवाद' का सफाया कर देंगे, पर इस क्षेत्र में लोग कमलेश झाड़ी के शब्दों पर विश्वास करते हैं, 'आप आदमी को मार सकते हैं, विचारधारा को नहीं'।

मांग

इस रिपोर्ट में वर्णित बीजापुर की मौजूदा परिस्थितियों के संदर्भ में पीयूडीआर मांग करता है कि :

1. सुरक्षा कैंपों को क्षेत्र से तुरंत हटाया जाए।
2. सुरक्षा बलों को क्षेत्र से हटाया जाए।
3. भारतीय संविधान की पाँचवीं सूची, पंचायत उपबंध (अनुसूचित क्षेत्रों पर विस्तार) अधिनियम 1996 (पेसा) और वन अधिकार अधिनियम 2006 (एफआरए) को लागू किया जाए।
4. ऑपरेशन ग्रीन हंट को तुरंत रोका जाए।
5. सार्वजनिक वाहनों में सीआरपीएफ, कोबरा, सीएएफ के सुरक्षा कर्मियों के सफर करने और हथियार ले जाने पर रोक लगाई जाए।
6. सुरक्षा कर्मियों द्वारा आदिवासी लोगों को झूठे मामलों में गिरफ्तार करने, प्रताड़ित करने, मारने पीटने, यातनाएं देने, लूटने और उन पर यौन हिंसा करने के सभी मामलों में एफआईआर दर्ज़ की जाएं।
7. आदिवासियों के अपने पारंपरिक औज़ारों और हथियारों को साथ में रखने के अधिकार को सुनिश्चित किया जाए।
8. हज़ारों आदिवासियों के खिलाफ जारी किए गए 20,000 स्थाई वारंट के संबंध में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा न्यायिक जांच शुरू की जाए।
9. सर्वोच्च न्यायालय, क्षेत्र में लौह अयस्क खनन के (पर्यावरण और आदिवासियों के जीवन और जीवनयापन के साधनों पर पड़ रहे) दुष्प्रभावों का स्वतः संज्ञान ले।

(आभारः पीयूडीआर सारकेगुड़ा, राजपेटा और बासागुड़ा के लोगों, जगदलपुर लीगल एड ग्रुप, बीजापुर के सीपीआई के सदस्य कमलेश झादी, और वानी खाखा का उनके द्वारा की गई मदद और सहयोग के लिए धन्यवाद देता है। रिपोर्ट में प्रस्तुत विचार पीयूडीआर के हैं।)

बॉक्स 4 : रेवाली में हत्या, प्रदर्शन एवं पुलिसिया दमन

6 जनवरी 2015 को दांतेवाड़ा जिले के रेवाली गाँव में सुरक्षा बल आए और 10 बजे सुबह भीमा नुपो की गोली मारकर हत्या कर दी। 40 वर्षीय भीमा नुपो पाँच बच्चों के पिता थे तथा जिस समय उनकी हत्या हुई वे अपनी पत्नी के साथ जंगल में लकड़ियाँ इकट्ठा करने के लिए गए थे। उनके पास कोई हथियार भी नहीं था। फायरिंग की यह घटना बिल्कुल ही अकारण थी। पूरी घटना नूपो की पत्नी बुधरी के सामने हुई। इसके बाद सुरक्षा बल आगे बढ़े और उन्होंने गाँव वालों को पीटना शुरू कर दिया, उनके मुर्गे–मुर्गियाँ, पैसे एवं अन्य सामान छीन लिए। जब बुधरी और गाँव के सरपंच प्राथमिकी दर्ज़ करवाने नकुलनार थाने में गए तो उन्हें पुलिस द्वारा डराया–धमकाया गया। बुधरी द्वारा स्पष्ट तौर पर यह बताने के बावजूद कि उसके पति की हत्या सुरक्षा बलों द्वारा की गयी थी, पुलिस ने सुरक्षा बलों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज़ करने के बजाय 'अज्ञात, वर्दीधारी एवं हथियारबंद माओवादियों' के खिलाफ एक केस दर्ज़ कर दिया।

परिणामस्वरूप, आक्रोषित गाँव वालों ने मुआवज़े और जाँच की माँग को लेकर, सोनी सोरी और जगदलपुर कानूनी सहायता समूह (लीगल एड ग्रुप) के साथ दांतेवाड़ा के एसपी और कलेक्टर का घेराव करने का निर्णय किया। 16 जनवरी को सोनी सोरी और स्थानीय पंचायतों के नेताओं के नेतृत्व में 20 पंचायतों के तकरीबन 8,000 लोगों द्वारा एक विरोध–जुलूस निकाला गया। भारी मात्रा में हथियारों से लैस पुलिस, एसडीओपी, तहसीलदार तथा नकुलनार, बचेली एवं आस–पास के दूसरे थानों के थाना–इनचार्ज द्वारा जुलूस को रोकने के लिए काफी दबाव बनाया गया। इसके पीछे कारण यह दिया गया कि पंचायत चुनाव को लेकर चुनाव आचार संहिता के अंतर्गत धारा 144 लगी हुई थी, जिसमें 5 से अधिक लोगों के एक साथ जमा होने की अनुमति नहीं होती है। गाँव वालों को दांतेवाड़ा जाने से रोक दिया गया और उन्हें हितावाद के एक स्टेडियम में जमा कर दिया गया। काफी संख्या में हथियारबंद पुलिस वालों की मौजूदगी के बावजूद दृढ़निश्चयी किन्तु शांतिपूर्ण प्रदर्शन ने एसडीएम हरेश मांडवी और एएसपी नरेश साहू को सरपंच, सोनी सोरी और भीमा नूपो के परिवार से मिलने के लिए मजबूर कर दिया। कलेक्टर और एसपी ने जहाँ डेलीगेशन से मिलने से मना कर दिया वहीं एसडीएम और एएसपी न्यायिक जाँच की माँग और 10 दिन के अंदर 5 लाख रुपये के अंतरिम मुआवज़े की माँग पर सहमत हो गये।

हालांकि कुछ ही घंटे में एसपी एवं कलेक्टर ने मीडिया के समक्ष ग्रामीणों की माँगों को स्वीकार किए जाने की बात खारिज कर दी। कलेक्टर के.सी. देवसेनापति ने बताया कि प्रथम दृष्टया इस बात का कोई साक्ष्य नहीं था कि भीमा को किसने मारा। दांतेवाड़ा के एसपी ने यह मानने से इंकार कर दिया कि इस हत्या में सुरक्षा बल का कहीं कोई हाथ था तथा बताया कि यह घटना सुरक्षा–बलों के 'क्षेत्र से लौटने के बाद' घटित हुई। इससे भी दुखद था कि नकुलनार पुलिस स्टेशन की स्थानीय पुलिस ने सार्वजनिक रूप से यह कहा कि पुलिस के खिलाफ लगाए गए आरोप झूठे थे; तथा ग्रामीणों द्वारा दर्ज़ करायी गयी प्राथमिकी में साफ तौर पर यह बताया गया था कि भीमा की हत्या माओवादियों ने की थी। इन परिस्थितियों में, जहाँ अधिकारी लोग स्वयं ही इस तरह के निष्कर्ष पर पहुँच गए हों, जो भी जाँच की जाएगी वह एक ढोंग से ज़्यादा और कुछ नहीं होगी।

यहाँ साफ है कि सुरक्षा बलों को अधिकारियों द्वारा क्लीन–चिट दे दी गई है। अधिकारियों ने नूपो भीमा की पत्नी बुधरी और बाकी सभी गाँव वालों पर झूठ बोलने का आरोप भी लगाया है। बुधरी, राकेश (रेवाड़ी गाँव के सरपंच), सोनी सोरी, दूसरे गाँवों के सरपंचों, नूपो भीमा की मौत के बाद प्राथमिकी दर्ज़ करवाने के लिए बुधरी के साथ जाने वाली महिलाओं, आम आदमी पार्टी के विभिन्न कार्यकर्त्ताओं जो जुलूस के समर्थन में आए थे तथा रैली में भाग लेने वाले बहुत से दूसरे ग्रामीणों के खिलाफ प्राथमिकी दर्ज़ की गई है।

छत्तीसगढ़ पर पीयूडीआर की कुछ उपलब्ध रिपोर्ट

1.**When the State makes War on Its Own People: Violations of People's Rights during the Salwa Judum,** May, 2006 (Joint Report)
2. **Casting the Net Wider: The Chhattisgarh Special Public Security Act, 2006,** June, 2006 (PUDR)
3. **Through the Lens of National Security: A report on the Arrest of Dr. Binayak Sen of PUCL Chhattisgarh** , February, 2008 (PUDR),
4. **Of Human Bondage: An Account of Hostage Taking in Bastar,** March, 2011 (CDRO)*
5. **जिंदगियों की कीमत** : **छत्तीसगढ़ में अपृहित पुलिस वालों को छुड़वाए जाने संबधित रिपोर्ट,** मार्च 2011, (पीयूडीआर)
6. **Anything Goes...In the Name of National Security: The Story of Soni Sori,** March, 2012 (Joint Report)
7. **Who is the State Hunting? (A report on some incidents of massacres by Security Forces and Salwa Judum under Operation Green Hunt, in Bijapur and Dantewada districts of Chhattisgarh between 2009- 2012)**, September, 2012 (CDRO)
8. **वे किसका शिकार कर रहें हैं? ऑपरेशन ग्रीन हंट के तहत छत्तीसगढ़ के बीजापुर और दांतेवाड़ा जिलों में सुरक्षा बलों और सलवा जुडुम द्वारा हत्याकांडों की घटनाएं**, अक्टूबर 2012, (सीडीआरओ)
9. **Working Against Odds: Condition of Workers in the Cement Industry in Chattisgarh,** November, 2012 (PUDR)

*Co-ordination of Democratic Rights Organisations (CDRO). For PUDR and CDRO press statements on Chhattisgarh see: *www.pudr.org*

प्रकाशक : सचिव, पीपल्स यूनियन फ़ॉर डैमोक्रैटिक राइट्स (पी.यू.डी.आर.)
मुद्रक : प्रौग्रेसिव प्रिंटर्स, ए– 21, झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया, जीटी रोड शाहदरा, दिल्ली 110032
प्रतियों के लिए : डॉ. मौशमी बासु, ए – 6/1, अदिति अपार्टमेंट्स, पॉकेट डी, जनकपुरी, नई दिल्ली 110058
सहयोग राशि : रुपये
ई मेल : pudrdelhi@yahoo.com
वेबसाइट : www.pudr.org